

बुद्धि-विलास

नृप कीन्हे असमेदादि[†] जग्य,
 बहु दान दिऐ लषि द्विज गुणग्य[‡] ।
 यह जस फैल्यौ चहु दिसि मभार,
 सुनि विप्रादिक आये अपार ॥१६४॥
 तितु ब्रह्मपुरी में दै वसाय,
 धन धान्य^१ ठौर दिय अधिक राय ।
 फुनि पूरव दक्षिण वीचि श्रौर,
 गिर परि अंवागढ विषम ठौर ॥१६५॥
 चहुघां पुर कै उपवन अनेक,
 तर सुफल फले तिनमें प्रतेक ।
 फुनि वन गिर सोभा अति लसंत,
 तहां ध्यान धरत मुनिजन महंत ॥१६६॥

दोहा • हुती राज अंवावती, सो जयपुर में ठानि ।
 करन लगे जयसाहि नृप, सुरपति सस सुष दानि ॥१६७॥
 भये भूप जयसाहि कै, पुत्र दौय अभिराम ।
 ईस्वरस्यंघ^{*} भये प्रथम, लघु माघोस्यंघ^{††} नाम ॥१६८॥
 रामपुरी^१ दुर्ग भान कौ, ताकौ लै कै राज ।
 दीन्हौ माघोस्यघ कौ, सगि दये दल साज ॥१६९॥
 बहुत वर्ष लौ राज किय, श्री जयस्यंघ अवनीप ।
 जिनकै पटि बैठे स्वदिनि^१, ईस्वरस्यंघ महीप ॥१७०॥
 तिनकी दान क्रपान कौ, जग जस करत अपार ।
 जिन सौ जंग जुरे तिन्हें, करि छांड़े पतभार ॥१७१॥

- १६४ १ असमेधादि ।
 १६५ १ धान ।
 १६८ : १ माघव ।
 १६९ १ रामपुरी ।
 १७० : १ सुदिन ।

†Aswamedh Yagya.

‡Able Brahmins

* (b 1721—d. 1750 A.D) Also see the "Isvaravilasa-Mahakavya" (Rajasthan Pura
 Granthmala No 29)

††(1750 67 A D)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक - पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ७३

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

मांन-वस-भांन जयसाहि कै समान स्याम,
 हरत गुमान निज दान सौं धनद के ॥
 मोती अनहद^२ के जराऊ साज सदके,
 कर हार रद के अनाथ दीन दरद के ।
 जीन जवूनद के तुरंग करी-कद के,
 मतंग मति मद के कढत सदा^१ सदके ॥१७७॥

सोरठा : चढी फौज करि कोप, भिरि भागे^१ जट्टा प्रबल ।
 नई चढी यह वोप, कछवाहन^२ की तेग कौं ॥१७८॥

दोहा : तिनकै पटि बैठे पुहमि, प्रथ्वीस्यघ नरिद ।
 सकग प्रजा पोषन मनौं, प्रगटे आय सुरिद ॥१७९॥

छंद भुजग उदै श्रग^२ अंवावती पीठि उग्यौ,
 प्रयात मनौं^३ अर्क सौं^४ उग्र तेजा सुहायौ ।
 अन्योक्त^१ : धरं धर्म सेतून के दिव्वि वाने,
 वडे भाग कौ छत्र मार्य तनायौ ॥
 म्हाराज^५ राजेश्वरी^६ की क्रपा^७ तै^८,
 म्हाराजि राजान^९ कौ विश्व भायौ ।
 प्रथी पालिवे कौ प्रथीराज^{१०} मानौं,
 प्रथीस्यघ कौ धारि कै रूप आयौ ॥१८०॥

सोरठा^१ : प्रथ्वीस्यंघ विष्यात, जा दिन तै भूपति भए ।
 मिटे सकल उत्पात, सुषी भई सारी प्रजा ॥१८१॥

दोहा : लषी भागि-वल^१ भूप कौ, मरचौ गयो^२ रिपु जाट ।
 भए सत्रुत मित्र सिष, इहै पुन्य कौ थाट ॥१८२॥
 नर-नारी दे आसिष, प्रथ्वीस्यंघ नरेस ।
 अचल राज करि जगत की, रक्या^१ करौ हमेस ॥१८३॥

१७७ २ हरद ।
 १७८ १ भाग्यौ । २ कछवाहन ।
 १८० १ अन्योक्ति । २ शृ ग । ३ मनौं । ४ missing । ५ म्हाराज ।
 ६ राजेश्वरी । ७ क्रपा । ८ तै । ९ राजानि । १० प्रथ्वीराज ।
 १८१ १ सोरठा ।
 १८२ १ भाग्यबल । २ गयो ।
 १८३ : १ रक्षा ।

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः, अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी,
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रधान सम्पादक,
सिंधी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि ।

ग्रन्थांक ७३

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

सम्पादक

श्री पद्मधर पाठक, एम०ए०

शोध-सहायक (प्रवर)

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशनकर्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२०

प्रथमावृत्ति १०००

भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५

ख्रिस्ताब्द १९६५

मूल्य : ३.७५ न०पै०

Rajasthan Puratana Granthamala

Published by the Government of Rajasthan

A series devoted to the publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Old Rajasthani-Guarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

General Editor

Acharya Jina Vijaya Muni, Puratattvacharya

Honorary Member of the German Oriental Society (Germany), Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Visvesvarananda Vaidic Research Institute, Hoshiyarpur, Punjab, Gujarat Sahitya Sabha, Ahmedabad, Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, General Editor, Gujarat Puratattva Mandira Granthavali, Bharatiya Vidya Series, Singhi Jain Series, etc etc

No 73

BUDDHI VILASA

OF

BAKHAT RAMA SAHA

Published

Under the Orders of the Government of Rajasthan
by

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR (Rajasthan).

BUDDHI VILASA
OF
BAKHAT RAMA SAHA

EDITED

(with introduction, appendices, variant readings etc)

BY

PADMA DHAR PATHAK, M A ,

Research Assistant, (Senior),
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

PUBLISHED

under the orders of the Government of Rajasthan

BY

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR (RAJASTHAN)

CONTENTS

1. Contents of the Text	I-II
2. Foreword	III-IV
3. Introduction	1-7
4. Appendix to the Introduction	8-20
5. Text	१-१७३
6. Verse order in A & B	१७४-१८८
7. Errata	१७३

CONTENTS OF THE TEXT

मगलाचरणा	१—२	षडेलवाल उतपति वर्नन	८७—९४
स्वर्ग नाम	२	क्रिया वर्णन	९४—९५
नरक प्रभा नाम	२—७	विनती	९५—१०१
नृप वश वर्नन	७—१४	रजस्वला वर्नन	१०१—१०४
नगर उतपति वर्नन	१४—३१	दान वर्नन	१०४—१०५
भाषा ग्रन्थ की	३१—३३	मौनि वर्नन	१०५—१०८
सघादि उतपति	३३—३४	सूवा सूतिग वर्नन	१०८
आचारिज आदि गृहस्थाचार- यति-वर्नन	३४—३५	सूतिग वर्नन	१०८
मुनि, श्रावक कौ उपदेस वर्नन	३४—४१	श्रावग धर्म वर्नन	१०८—११३
मुनि शास्त्र करता नाम वर्नन	३५—४१	तियनु कौ उपदेस वर्नन	११४
विसघ उतपति वर्नन	४७	असत्ति वर्नन	११४
सघ नाम वर्नन	४७	अचोर्य व्रत वर्नन	११४
भद्रवाहु चरित्र	४७	परिगृह वर्नन	११५
सोलह स्वपन वर्नन	४८—५६	सप्त विसर्न वर्नन	११५—१२४
उपकर्ण नाम	५६—५७	तीर्थकर पिता माता चिन्ह	१२४—१२६
चौरासी बोल छंद छपै	५७—६८	जनम नगरी वर्नन	१२६
द्रावड सघ उतपति वर्नन	६८	सप्त प्रकार माला जपिवा	१२६
ज्यापनीय संघ उतपति वर्नन	६९	वेद निरनय कथन	१२६—१२७
काष्ठा सघ उतपति वर्नन	६९—९०	भिन्न भिन्न वेद निरनय	१२७—१२९
निपिछ्छ सघ उतपति वर्नन	७०—७१	ज्यार गति लछिण वर्नन	१२९—१३१
कुदकुंदाचार्य वर्नन	७१—७९	ग्रहादिक पूजन	१३१
मडलाचार्य उतपति वर्नन	७९—८०	प्रथ्वी नाम	१३१
परिपाटी भट्टारकानि की वर्नन	८०—८१	कुलकर नाम	१३१
पट्टावली वर्नन	८१—८५	कामदेव नाम	१३२
श्रावक उतपति वर्नन	८५—८६	चक्रवर्ति नाम	१३२
षाप वर्नन	८६—८७	वलिभद्र के नाम	१ २
		नारायण नाम	१३२

प्रति-नारायण नाम	१३३	आचार्य गुन वर्नन	१४०—१४१
नव नारद-नाम	१३३	उपाध्याय गुन वर्नन	१४१—१४५
ग्यारह रुद्र-नाम	१३३	साधु गुन वर्नन	१४५—१४६
सोलह सती-नाम	१३३—१३४	श्रुत भेद ग्यान द्वादसाग	
तीर्थंकर मुक्ति आसन वर्नन	१३४	त्रानी वर्नन	१४६—१४७
तीर्थंकर कवारे गए तिनके		सूत्र वर्नन	१४७
नाम	१३४	प्रथमान जोग वर्नन	१४७—१५१
श्रावक के सप्तदश नित्त-नेम		श्रावग क्रिया वर्नन	१५१
वर्नन	१३४—१३५	चौदह विद्या व रतन नाम	
ग्यान सूर्योदय नाटिकेन		वर्नन	१५१
श्लोक	१३५—१३६	कलिकाल दोष उपद्रव वर्नन	१५१—१५५
आगम की वर्नन	१३६	एक राँ आठ पुराणोक्त	
जीवं उत्पति वर्नन	१३६—१३७	वर्नन	१५५—१६८
सुरोदये मतेन वर्नन	१३७	तरेपन भाव कथन	१६८—१७१
गर्भ नाम-सग्या वर्नन	१३७—१३८	केवल ग्यान कथन	१७१—१७२
पंच-परमेष्ठी गुन वर्नन	१३८—१३९	पद्मनदि पचीसका	
आठ मंगल-द्रव्य वर्नन	१३९—१४०	दानाधिकार वर्नन	१७२
सिद्ध गुन वर्नन	१४०	कवि लघुना वर्नन	१७२—१७३

FOREWORD

The *Buddhi-Vilasa*, which we are placing in the hands of scholars as the seventy-third number of the Rajasthan Puratan Granthmala, is a work which appears to have been written primarily for rendering the 'Nitisāra' etc, into a simple language for the use of common people of the Jain sect. The description of the chain of rulers and the description of the foundation of Jaipur, a new city by Sawai Jai Singh have come in secondarily, but prior to the main work. It had, however, become a practice among the authors of the medieval times to give adequate importance and respects to the rulers of the area or state where they lived in.

The historical description of the ruling family of Jaipur and that of the foundation of the city of Jaipur though secondarily implied in the work has attained primary importance, the latter being a contemporary evidence as remarked by the editor in his introduction.

The *Buddhi-Vilasa* is not a poetic work, but a narration of facts in simple metrical language. However, the author could not restrain his sense of poetic appreciation as, he has adopted some illuminating couplets of other poets in praise of the rulers of Jaipur. From the language point of view we find in the work a queer mixture of the Braj and the Dhoondari dialect spoken in Jaipur. The resultant form of speech tells us of the influence of the Braj-bhasa over the Dhoondari and vice-versa. A small lexicon of all such words can be prepared for the students of language.

Besides the history of Jaipur and the interesting description of the foundation of the new city, the author has made references to some important and interesting events relating to the development of the Digamber Jain sect particularly in Jaipur and in Rajasthan in general. The events relating to the practice of the use of 'langoti' and riding a palanquin adopted by Bhattarak Prabha Chandra of Chittor during the time of Peroz Shah, (p 78), the origin of the Khandelwal caste among the Jainas (pp 87-88), and lastly the ill-treatment received by the Jainas at the hands of one Shyam Tewari and their rescue by the courtsey of Sawai Madhosingh I (pp 151-52) described by the author as an eye-witness are the facts which need be verified by historical evidences. These provide very good material for study and research.

B Ms No	1955
Name	Buddhi-Vilāsa
Copyist	Syōjī Rāma Bhāvasā, as desired by Jeevaṇa Rāma Śāha S/o Bakhata Rāma Śāha
Material	Paper, of an inferior quality
Script	Devanāgarī
Extent of the Ms	74 Folios, Complete
Size of leaves	8 cm × 6 cm
Number of lines	Average 15
Letters	33-35 per line
Writing	Legible, Corrections in the text with red pigment
Age	Samvat 1863 (i e A D 1806)
Begins	१ ॥र्व०॥ उं नम० सिद्धेभ्य ॥
Ends	इति श्री बुद्धिविलास नाम ग्रंथ संसपूर्णम् । श्रुम भवत् ॥ संघत् १८६३ का मित्ती आसोज श्रुक् ६ सोमवार लिषाइत जीवणराम साह वेटा बषतराम का दसकत स्थोजीराम भावसा का लिषवा मे असुद्ध षोट होय तो सुद्ध करि लीज्यो पाठ माफिक लिषाइत ज्यो वार्च सूरण सूरणावे स्थाने जथा जोग्य बचीण्यो श्रीरस्तु कल्याणमस्तु । ॥श्री॥१ ॥श्री॥२ ॥श्री॥३ ॥श्री॥४ ॥श्री॥ रस्तु ।

Bakhata Rāma's indebtedness to Jai Candra Chābarā in practically all his writings The BV, as Śāstri has put it, was regularly sent to Jai Candra Chābarā for review, and in support we reproduce a few remarks from Jai Candraya himself asking Bakhata Rāma to revise the text

“जैसे फेरि पाना १९ आया सो वांच्या त्यामे, तारां का विमान को परिणाम सर्व को पीण कोस को लिख्यो, सो तिलोकसार में घाटि-वाधि भी लिख्यो छै ।”

“पटलनि में दूजै पटल में जघन्य आयु सागर की लिखी सो आघ सागर की चाहिजे सो ठोक करो ।”

“छदनि में मात्रा कही कही हीनाधिक हैं तथा लुक भी कहीं कहीं अणमिल है सो संभाल ल्यों ।” — p 102 of the article.

II

The Author

Bakhata Rāma Śāha son of Pema Rāja Śāha was a native of Chātsū situated about twenty-seven miles South-East of modern Jaipur. The present text is essentially based on the well-known precepts of the Jaina religion and as such, the author has no claims to all original. Besides the BV, we have another work assigned to him namely the “Mithyātva Khandana Nāṭaka”,† (मिथ्यात्व खंडन नाटक) once again based on standard Jaina texts. Both the works refer to Bakhata’s association with Jaipur where he had patronised the temple of Laskarī as a frequent visitor. Bakhata was a Jaina by religion and a follower of the Dīgambara school.

From the text itself we come to know that Bakhata Rāma Śāha took up the work as desired by Paṇḍit Kalyāna and Muni Guṇakīrti of the temple of Laskarī. Relevant extracts from the “Mithyātva Khandana Nāṭaka” also, supplementing the BV are given below to show how much they are in harmony with each other. The Nāṭaka is dated Samvat 1820 (i.e. 1763 A.D.)

“अथ अनेक रहस्य लषि, जो कछु पायौ थाह ।
 वषलगम वरन्नु कियो, पेमराज सुत साह ॥१४१४॥
 आदि चाटसू नंगर के, वासी तिनिकौ जानि ।
 हाल- सवाई जंनगर, मांहि बसे हैं आनि ॥१४१५॥
 तहां लसकरी देहुरे, राजत श्रीप्रभु नेम ।
 तिनफौ दरसण करत ही, उपजत है अति प्रेम ॥१४१६॥”

Similarly couplet No 1411 carries a hint to Bakhata’s regard for Paṇḍit Kalyāna

Nāthū Rāma Premī has mentioned one more work by Bakhata Rāma namely the “Dharma-Buddhi Kī Kathā”, (धम बुद्धि की कथा) so far, nowhere available in any of the Dīgambara Grantha Bhandār’s of Jaipur

Certain fragmentary religious couplets find a mention of mere “Bakhata” which as the catalogue of the Bhandār’s would reveal have been equated with the same Bakhata Rāma Śāha on the obvious conjecture as to be his pen-name. Such sketchy references slip away unless we could establish that they stood for our author. To quote a few lines from such

†The autograph copy available in the temple of Pātodī, as gutkā No 2
 Hereafter mentioned as MKN

miscellaneous couplets do such sentences, as "मेरा वषत भला है" or "तवही तू जानि लीज्यो मेरा वषत फला है", land us anywhere? Although they belong to a period about Samvat 1829 (i.e. 1772) but it may clash with reality for want of evidence. Besides, there are all chances of several contemporaries having the same name, as is actually the case with one Bakhata Rāma Gōdhā, who was a contemporary of our author, and most probably Premī mistook him for Bakhata Rāma Śāha when he quotes the "Dharma-Buddhi kī kathā". Couplet 86 of the text finds a mention of Kavi 'Rāma', and if probabilities be given a long rope we can take it to be the pen-name of our author, being the second word of his full name. But, nowhere in the text he does it again. We can, therefore, safely keep aloof from such trivialities, as they unnecessarily drag us towards speculations. We have enough in the BV and the MKN regarding Bakhata Rāma Śāha to allow us to proceed with a certain degree of confidence. Similarly the text of the BV is very much intact in nature and we have very little to gain by a third copy.

III

Age

The work is dated Samvat 1827 (i.e. 1770 A.D.), the year Bakhata Rāma Śāha could finish this work. A substantial portion of the work is a mere translation into a simpler language of the well-known Jaina texts i.e. the 'Nītisāra' of Indraganī and the like. Other names occurring in the text have not been reproduced here to avoid sheer repetition. It reflects the honesty of the translator to have openly acknowledged the source of his writings. The work is thus the essence of different centuries, except the portion, contemporary to our author.

IV

Importance of the work

The BV is a work on religion. The obvious gravity in the subject readily accounts for preachings and morality occurring in quick succession. However, diversions from the 'Nītisāra', and other old texts are many and they lend the work a new look and provide occasion for editing the text.

In about twenty-three pages (6 to 28, of the printed text) the author has taken up the history of the Kacchvāhā rulers of Amber and brings it up-to-date to his own times. The author belonged to Jaipur and consequently this local influence is repeatedly marked in the text. Elsewhere also, at several places he has brought Jaipur into picture. This brings us near to a wider conclusion besides revealing the secret behind editing such purely religious works. To the modern historian the BV

would have served little purpose, if the author had satisfied himself with a bare naming of the Kacchawāhā rulers. On the other hand, he has exhaustively dealt with the Jaipur of the times of Sawai Jai Singh as an eye-witness (also noticeable from the remarkable ease in which he has done it). In every case this portion is his own contribution to the text.

One may raise the question, whether Bakhata Rāma Śāha was an eye-witness to that portion of the text where he has described the prosperity and other aspects of the new city of Jaipur founded by Sawai Jai Singh. His MKN was completed twenty-one years after the death of Jai Singh in 1743 A.D. The grave nature of both the works is a clear index to his having attained maturity as a grown up man. Besides, his works even as translations are not mere mechanical reproductions of old texts, as is usually the case with professional scribes. Bakhata Rāma Śāha had regularly exercised his own intellect and this also exposes the sedate in him. If one were to judge this work as a source of contemporary history it stands in gain in comparison with whatever little information we have on the medieval period of Indian History based mainly on the writings of the Persian Court-chroniclers. The Non-Persian sources have not yet been studied properly and historians are very much unaware of such works as the BV, where historical passages appear and re-appear in works of the like nature. Possibly all such writings may no more change our conclusions towards the common trend of medieval Historical writings i.e. a mere record of simply what happened and when, and that too within the rigid framework of a predominantly Political History. Medieval scholarship had certain serious limitations. They were all battle loving historians bare to the bone.

Even in the BV there is the too common a deification of the Kings and their faultless deeds, but at the same time we come across a useful account of the new city of Jaipur, which considering its extent is not accidental, but motivated with a desire to give a contemporary account of great interest. It is most useful to pick up all such passages, even if they occur in manuscripts on subjects other than History. Besides, in such works as the BV, the author enjoys a certain degree of freedom in telling the truth which was rarely enjoyed by official historians. Thus we can raise volumes of such relevant to history passages. While describing the city of Jaipur, the author has not viewed events exclusively from the angle of small social units, and both the king and his subjects have played their role in making the Kacchawāhā Capital, truly an Eastern metropolis. Founded by the famous astronomer, Sawai Jai Singh, it takes its name from that illustrious prince to whom the essence of history lay in change. He began to build with a passion with an insatiable curiosity and energy. The "Pink-city" rose with fantastic speed. He never cared to be surround-

ded by puppets to keep his pride high, rather he chose great men, from all quarters of the country. It is as a statesman, legislator, and scientist that his name has come down to posterity.

Bakhāta Rāma Śāha has shown his awareness of the times of Prithvī Singh of Jaipur (1767-1778 A D) and the BV is dated A D 1770. He might have survived even longer, but as for his literary career the BV marked a close. Had he lived to see the reign of other princess that followed Prithvī Singh, he would not have missed to mention their names as he has carefully been doing with the royal lineage without indulging into chronological overlapping either. He has hurriedly passed through the reign of Prithvī Singh, and his predecessors with an awareness of their individual places in History limited to a paragraph or, at the most, a page, but coming to Sawai Jai Singh, he has shown that the astronomer cannot be put between the covers of a volume. His reign-period hung suspended in Hinduism. The range in mental abilities of Jai Singh must have been enormous.

Having dealt with the main attraction of the work, it is essential to cover in brief the subject-proper which in extent is more mountaneous than the mole-hill, I have been discussing so far. The introduction here provides no occasion for a detailed account of the Digambara Paṭṭāvalī's, well-known works like the Tattwārtha—Sūtra (तत्त्वार्थ सूत्र) etc as having already undergone scores of popular editions. Beginning with the Jaina Geography the author has traced the entire history of the Digambara sect, where the most interesting portion happens to be the one that deals with the establishment of different Jaina seats (gacchas, गच्छ) at places like Jaipur, Sāngāner, Chittor, Nāgaur, Raṅthambhōr etc. They tell us of the spread of Jainism in Rājputānā. Scholars are of the view that the main purpose of our author was to arrest the growing strength of the so-called "Thirteen-Panthīs" (तेरह पंथी) whose ways were not liked by serious divines who grew alarmed.

In the text there is a mention of the open conflict between the Jainas and the Vaiṣṇavās of Jaipur, particularly during the time of Sawai Mādho Singh I. The author has passed personal remarks against one Shyāma Tewāḍī—a troublesome Vaiṣṇava. Although very much in the nature of a direct hit against the Vaiṣṇavās, however, the author has nowhere played the bigot. This portion of the work needs a study. The rulers of Jaipur had regard for both the Jainas and the Vaiṣṇavās, and did their best to find ways and means acceptable to both, on occasions of conflict.

Other passages of the text, deserving an elaborate treatment, have been noticed immediately in the following pages. Similarly, the various foot-notes running parallel with the text would prove useful.

In the end, I take this opportunity of expressing my deep regard for the revered Āchārya Muni Śrī Jinavijavji Mahārāja, Honv Director of the Institute, and Shri Gopal Nārāyan ji Bahurā, Deputy-Director, who have given me the opportunity to work on this ms under their guidance and constant encouragement

Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR,

Padmadhar Pathak

12 December, 1963

APPENDIX A

‘नगर उत्पत्ति वरनन’ P.14, L.13.

Eight miles to the South of Amber, the previous capital of the Kacchwahars, Jai Singh founded a new city of Jainagar or Jaipur. The nucleus of Jampur was the palace and garden at Jai-Nivas, the foundation of which was laid in A D 1725. Then followed the construction of the ‘Chandra-Mahal’ and the ‘Jai-Sagar’, but the plan and the construction of the entire city as such, began from the year 1727.

Jai Singh observed all the religious practices required at the time of the foundation laying ceremonies as prescribed in the Hindu texts. This work he assigned to his ‘guru’ and the official high-priest named Jagannatha Samrata. Due propitiatory rites like the ‘Vinayaka Shanti’, ‘Vastu-Shanti’, and the ‘Nava-graha Shanti’ were all performed by Jagannatha. If what the ‘Manasara’, (a well-known treatise on Hindu architecture) says be followed, the astrologer priest must be proficient in the Vedas and Sastras. Jagannatha fulfilled this qualification. He was granted eight ‘bighas’ of land, free of rent in the village Hathroi, now a part of the present Jaipur. The deed or ‘patta’ granted to Jagannatha is given below, as it helps us deciding the exact hour and day of the foundation of the new capital.

‘डोल करार मित्ती जेठ सुदि ८ साल सम्वत् १७८४ पुन्य उदिक धरती वै० जगनाथजी समराट ने जो सवाई जयपुर बसायो ती नेमत मित्ती पोस वदि १ सम्वत् साल १७८४ ने धरती वीघा ८ अके आठ सकलप करी सो वास्ते धरती के भीती माह सुदि १५ सम्वत् १७८४ मारफत किसनराम की अरज पहोंची हुकम हुवा धरती वीघा आठ छोयो ती मधे वीघा ४ सवाई जयपुर की वाग के वास्ते व वीघा च्यार नजीक गाव सताई जयपुर का की स्यालु की दीज्यो वरसाले दीवाण नारायणदास किरप्राराम दाखिल वाके करो धरती वीघा आठ मा० तकसील सवाई जयपुर की वाग के वास्ते वीघा च्यार ४ गाव भोतपुर नजीक हयरोही मधे वा स्यालु की वीघा च्यार ४ ।

मु० याददास्ती व मोहर कीसनराम वाके दसकत ।

In all a sum of Rupees 1083 and annas five were spent in the ceremony, as supported by the following document contemporary of the event

“डोल करार मिति फाल्गुन वदि १ सम्बत १७८४ पुन्य जो सवाई जयपुर नवो बसायो तीठे मिति पोस वदि १ सम्बत १७८४ विन्दायक सांती, वा वासुत सानी, नोगिरह सांती करवाई त्याने लाग्या सौ रुपया १०८३।) के वास्ते मारफत स्वामरास्ट नाथजी की मिति माह वदि ११ सम्बत १७८४ अर्ज पहुची हुक्म हुवा सीगे पुन्य के दाखल कर तनखाह खजाना माल इतमाम खोज पत्ता का परी तनखाह कर छो वरसाले दीवान नरायणदास वा किरपाराम दाखल वाके करो रुप्या वसुली एक हजार तीरासी अना पाच दीज्यो १०८३।) ।

मु० यादीवास्तीन महोर स्वामरास्ट नाथजी वार्म दसषत दीवानीयान दा० स्याहे हजूरी मिति माह सु० ६ सम्बत १७८४ किता १—।

Both the documents have been used above because there is lack of unanimity among scholars as regards the exact hour and date of the foundation ceremony. Copies of these were formerly preserved in the ‘Dewani Huzuri’ office of the erstwhile Jaipur State. These may now be verified from the records of the Rajasthan Archives Department, Bikaner. Also, the pattas for the grant may be traced out in the family records of the Samrat. Obviously, depending upon a source secondary in nature, however, such evidences have more weight than later records. Other works that differ in dates need not be cited here till the Jaipur Pothikhana is thrown open for scholars and the original documents studied.

Sawai Jai Singh was deeply interested in the study of town-planning and he had read many books on the subject. The new city built by him was planned by Vidyā Dhara, a Brāhmin from Bengal. The entire theoretical lay-out of the city was his. In his memory one street and a garden in the ‘Vidyā Dhara ka Rasta’ and ‘Vidyā Dhara ka Bagh,’ (in the Purana Ghat) still exist in Jaipur.

The rise of this family of Brāhmins from Bengal is due to Rājā Mān Singh of Amber. On his return from the Bengal expedition he is said to have brought with him an idol of ‘Śilādevī’ from there, and is even to this day kept in Amber. With the idol of the Goddess accompanied Her hereditary worshipper Purohita Ratna-garbha Sārvabhauma Bhaṭṭācārya, a “Pāścātya Vaidika Brāhmana” Vidyā Dhara belonged to this very family†. Deb, has given the

†Vidyadhara—Bimalcharan Deb

genealogical tree of his family beginning from Rājendra and closing with the mention of Śivarāma (1904-5 A D)

Vidyā Dhara was appointed 'Diwan' after the death of his maternal uncle Kishan Rama Later on, when Sawai Madho Singh ascended the throne in 1752, Vidyā Dharā withdrew himself from the scene He earned the fury of Mādho Singh who confiscated all his possessions, and the illustrious family vanished from the stage of local history

The BV makes no mention of Vidyā Dhara, because it is more a description of a general nature It was left to the interested to fill up the blank The 'Īśvara-Vilāsa-Kāvya' ‡ by Kṛṣṇa Kavī is dated 1744, written hardly a year after the death of Jai Singh In the tenth canto (सर्ग) of his work, he has clearly mentioned Vidyā Dhara

“बगालयप्रवरर्वदिकगौडविप्र क्षिप्रप्रसादसुलभ सुमुख कलावात् ।

विद्याधरो जयति मन्त्रिवरो नृपस्य राजाधिराजपरिपूजितशुद्धबुद्धिः ॥” ३८॥

There are many more passages in this work that remind us of Vidyā Dhara and his ancestry

Girdhārī wrote the 'Bhōjana-Sāra' in his capacity as the court-poet of Jai Singh This work is dated A D 1739 and is yet unpublished * The 182nd couplet of this work on dietetics quotes the name of Vidyā Dhara as the architect of the new city

पुरा करे बहु हरष करि, मन महि मोद बढाय ।

विद्याधर सौ बोलि कहि, सहर सु एक बसाय ॥

Vidyā Dhara thus occupied a significant position in the history of Jaipur Col James Tod, has spoken of his genius as an adept architect and astrologer He has fallen into the error of holding Vidyā Dhara as the follower of Jainism, and a Jain by birth as well He writes, “Vidya Dhara, one of his chief coadjutors in his astronomical pursuits, and whose genius planned the city of Jaipur, was a Jain, and claimed spiritual descent from the celebrated Hemachandracarya, of Nahruala, minister and spiritual guide of his namesake, the great Siddhrāja Jai Singh ”

The annalist does not mention the source of his information This is in brief the initial story of what our author has preferred to

‡ Pub in the 'Rajasthan Puratana Granthmala' no 29

* Preserved in the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona

sum up in a mere sentence i.e. "नगर बसायो एक नयो, जयस्यंघ सवाई ।" He then proceeds to describe the condition of the people, who were attracted to settle there because of the general economic prosperity

- (२) "व्याए नहरि बाजार माहि. विचि मे वंवे गहरे रपाहि ।
चोकनि में कुड रचे गभीर, जग पीवत तिनको मिष्ट नीर ॥" १०१॥
p. 15, l (9-12)

A canal was built to supply water to the new city. Ananda Ram Mistri was commissioned to survey the neighbourhood. His report written on 16th July, 1726 is still preserved. The source selected was the Jhotawada river, four miles north-west of the new city. The device made to bring water in the city can still be traced out as the entire water route lies buried below the busy market streets of the city.

The water reservoirs were public places situated at the two chaupars, (four-sided meet) then popular as the 'Sanganeri-chaupara' and the "Amber ki chaupara". Unlike what they look like today, formerly they were in the form of reservoirs (Kunda) with steps leading to the surface of water. Later on, when more water taps were installed during the reign of Sawai Ramsingh in different localities of the city these reservoirs lost their importance and were used for the 'tenth day bath' after burning the dead. On this particular day, the relatives of the dead, before a bath, had to entrust their heads to the barber, whose function it was to remove all their hairs, and give the top a coconut-like appearance. These barbers used to sit under the 'baḍa tree still standing in the four corners of these chaupars. In memory of their past headquarters a few foot-path barbers are still seen sitting under these shady trees. During the times of Sawai Madho Singh II these water-reservoirs were converted and given the present decorum.

- (३) 'घाए निजूमो जोतिगो, बहुरघो किरगो कीतिगो' ।
तिन रच्यो जंग्र बिसाल है, तामे ग्रहों को चाल है ॥१०५॥

So great was Jai Singh's enthusiasm with which he pursued his study of astronomy that he sent envoys to Europe to ascertain what progress they had made in the science of the Heavenly bodies. "Feringi", has been used here for Father Padre Manuel de Figueiredo,

who was relieved from the Mogor mission at Agra, to help Jai Singh in his work This was in 1730 The father went to Europe, to bring books and astronomical instruments His friend Pedro-de-silva Leitao, who had come from Goa settled in Jaipur where he died about 1792 A D Silva's grandson was a physician of repute known as Hakim Mārtin* He became an influential courtier, but his family did not survive long

For an exhaustive study of the subject, we have nothing to equal G R Kaye's "A Guide to the Observatories at Delhi, Jaipur, Ujjain, Benares," published from Calcutta in the year 1920

(४)

तहें रहैं कारखाने छतीस ॥१५१॥
 यह हुतौ कारखाने त नौंस,
 पारसी नाम ता मद्धि दोस ।
 नृप काढि हिंदवी नाम कीन,
 गृह संग्या यह ठानी नवीन ॥१५२॥

The Mughals had a smooth system of running the administration through various departments each designated a "Karkhana" Borrowed from Persia, in the words of Huart†, the Karkhana system had come to stay in Hindustan with the rule of the Mughals, although even before, during the pre-Mughal period of Muslim governments in India the system was in knowledge‡ Basically, these departments dealt with the management of the royal paraphernalia The Karkhana system soon became model for practically the whole of Hindustan, leaving the Rajput States no exception to it, particularly Jaipur of the Kachawāhās who had very close relations with the affairs at Delhi and Agra

The author has mentioned thirty-six Karkhana's which were essentially the same as mentioned by Abul Fazal in his Āin But, as the work shows, it was Jai Singh who brought a change by giving Hindi names to the hitherto existing Persian names for these departments The author then proceeds to describe the new-names and abruptly

†Read Clement Huart's "Ancient Persia and Iranian Civilization"

‡Read Afif's "Tārīkh-i-Firyūshāhī"

*The descendants of Hakim Martin are still living in Jaipur They enjoyed a big Jagir of village 'Banar', a Rly Stn in the west of Jaipur known as 'Nīr-tar-Banar' on the Jaipur-Jhunj'unu line

finishes the subject supplying four names only i.e. "Gaja-Graha", "Aśwa-Śālā", "Ratan-Graha" and the "Dhan-Bhandāra". The link ahead is not possible from the work itself, but other unpublished sources including the Jaipur records preserved in the State Archives of Bikaner, throw further light on the subject, although in some cases they may cause modifications when the Archival papers have been carefully studied and properly assessed.

In the State Archives of Rajasthan at Bikaner, we have many bundles of documents giving all the details of the various Karkhanas, namely,

- (1) *Kirkari-Khana* (It dealt with the private treasury of the Jaipur rulers. Later on it merged into the 'Kapaḍ-dwārā')
- (2) *Butāyat* Dealing with the maintenance of orderlies and conveyance
- (3) *Kośa-Graha* (Part of the Kirkari-khana)
- (4) *Tośā-Khana* (Store-room of ornaments, precious-stones, robes etc of the rulers and their house-hold members).
- (5) *Zeen-Khana* (Department dealing with the saddlery of horses, robes etc of the rulers and their house-hold members),
- (6) *Ratan-Graha* (Store-room of precious stones, such as pearls, rubies etc)
- (7) *Kothi-Hazuri* (Later on called as Modī-Khana)
- (8) *Khazana* (Royal treasures)
- (9) *Feel-Khana* (Department dealing with the maintenance of elephants of the State)
- (10) *Top-Khana* Deptt of arms and ammunition
- (11) *Baraat* Deptt for making arrangements for the Royal processions
- (12) *Sileh-Khana* (Dealing with the maintenance of armoury, namely swords, shields, spears, barchi's, kaṭāra's etc.)
- (13) *Khusbū-Khana* (Preparation of the perfumeries for the use of rulers and their family members)
- (14) *Okhad-Khana* (Preparation and supply of medicines to the rulers and their family members)
- (15) *Gao-Khana* (Maintenance of cows and supply of milk)
- (16) *Tambol-Khana* (Betles for the rulers and their household members)

- (17) *Rasoi-Khana* (Kitchen and its arrangements)
- (18) *Patar-Khana* (This department employed the dancing girls at the time of Darbars and other royal functions).
- (19) *Farrasa-Khana* (Maintenance of the entire camp equipage of the rulers)
- "
- (20) *Rang-Khana* (Preparation of colours of all kinds).
- (21) *Surat-Khana* (The drawing of pictures and portraits was the main function of this department)
- (22) *Khyal-Khana* (Associated with the preparation of fire-works and their display on important festivals and functions)
- (23) *Shutar-Khana* (Maintenance of camels and their supply was the main function of this department)
- (24) *Seenan-Graha* (This section dealt with the sewing of the royal robes for the rulers and their household members)
- (25) *Ghoda-Nikas* (This section collected taxes on the import and export of horses in the state)
- (26) *Dag-Ghoda* (The branding of horses, maintained by the jagirdars was, the main function of this department)
- (27) *Mewa-Khana* (This department dealt with the supply of dry fruits for the use of the rulers and their household members)
- (28) *Chhapa-Khana* (Dyeing and designing of the clothes), later on the name was given to State Press
- (29) *Agra Jantra Graha* (This section supplied articles required for performing yagña)
- (30) *Masala-Khana* (Department to make arrangements for lights, chiefly the Masāl's used at the time of the marches of the army)
- (31) *Imarat* (Construction and maintenance of the buildings belonging to the state)
- (32) *Gumyana-Khana* (This department made necessary arrangements for musical performances by the singers)
- (33) *Rosana-Baqi* (The daily accounts of Kothiyar Huzuri, showing the amount of balance receipt, and expenditure of various Karkhanas e.g. Sileh Khana, Topkhana etc were maintained by this dept)

(34) <i>Pothī-Khana</i>	Royal Library
(35) <i>Palkī-Khana</i>	Palanquins Deptt
(36) <i>Karkhana Punya</i>	Incharge of the ecclesiastical rites performed by the king

Except 3, 6, 14, 15, 17, 24, 29, 34, 36, none of these above mentioned Karkhanas seem to represent the new-form as referred to in the BV

We now come to another manuscript† which is a hand-book of different topics beginning with a topographical account of India under the Mughal map. Though undated, it belongs to the 18th C, and has been discovered from Jaipur. One Dalpatinarayan is the author, who has disclosed his name on page 23rd of the manuscript. From page 17 to 26 there is a separate section on the titles and duties of the State-officials and the names of the 37 Karkhanas. While quoting the Karkhanas he has given a comparative chart of the Persian and Hindi names of the departments. Possibly, the necessity for supplying such a comparative chart might have arisen to facilitate identification of the new-names quoted against their previous 'Sambhodan'. This work contains the following chart of the Karkhanas

शय्यागार	सुखसेजघाना	कुम्पशाला	रिकाबघाना
मज्जनागार	गुसल्लघाना, हुम्माम	फाइयागार	ठठेरघाना
देवायतन	तसबीहघाना	महानस	बबरचीघाना रसौडा
पुस्तकालय	फिताबघाना	जलगृह	आबदारघाना, पाणोरा
चित्रागार	तसवीरघाना	तांबूलगृह	तबोलघाना
भैषज्यागार	दवाईघाना	प्रतिश्रय	बिलगोरघाना, लंगर
फलागार	मेवाघाना	क्रयशाला	इबतियाघाना
कोटागार	जषीरा, अवार कोठार	सीवनागार नेपथ्यागार	फिरकिराघाना तोशकघाना, कपडदारा
महौषधीशाला	मोदीघाना		
सुगधाकार	पुशबोईघाना सौधाघाना	यानशाला	रथघाना
वर्णागार	रूगघाना	पालक्रागार	पालकीघाना
कलादागार	जरगरघाना	दारुकर्मालय	धातिमबदघाना
रत्नागार	जवाहिरघाना	दीपिकागार	शमै, चिरागघाना
प्रहरणकोश	कोरघाना, सिलहघाना	लेखशाला	दफतरघाना
सस्तरागार	फराशघाना	मृगयागार	शिकारघाना

श्रीगृह	षजाना, भंडार	शाकुनिकासय	कोशषाना
दानकोश	बिहला		
मठरा	अस्तबल तबेला		
चतुर	फीलषाना		
सदानिनी	गावषाना		
उद्देशला	श्रुतरषाना		

As already hinted above, a complete list of the names of these departments maintained with a changed nomenclature during the time of Jai Singh can only be prepared when Archival documents have been studied. However, the manuscript used above covers much of the information sought after. The novelties introduced by Jai Singh in the field of administration requires a further explanation from historians who find in it a weakening of the Imperial prestige following the death of Aurangzeb

(५)

नृप कीन्हें असमेदादि जग्य,
 चहु दान विये लपि द्विज गुणग्य ।
 यह जस फल्यो चहु दिसि मभार,
 सुनि विप्रादिक आये अपार ॥१६४॥
 तिनु अह्यपुरी में दे वसाय,
 धन धान्य ठोर दिय अधिक राय ।

 ॥१६५॥

p 26 l (1-6)

These lines at once suggest the gradual revival of the ancient Hindu traditions so forcefully put to action by Sawai Jai Singh. Considering the times, Jai Singh lived in, it was a bold attempt on his part to set aside the general conduct expected of a vassal of the Mughal Empire. How, and in what speed things took a turn is beyond our purview but it goes partially established that Jai Singh rose high having gained a marked ascendancy over the Imperial dictates 'Ashwamedh', had long ceased to be performed, but it appeared again under his attempts. D. C. Sircar† on the grounds that being a subordinate to the Mughal Emperor, Jai Singh could not have performed such a sacrifice. Evidence contemporay, as also slightly

† 'Sawai Jayasingh of Amber' — *Indian Culture*, vol III, no 2, pp 376-379.

The portion that deals with Jai Singh's march against Jodhpur, is merely part of an annexure to a 'gutka'. The first two works of this 'gutka' are dated V S 1726 (A D 1669), but the one in question carries neither date nor the name of the scribe. But, the script and the mode of writing put it close to the event. The whole of it has been reproduced below, and incidentally the present description is more elaborate than what Ojha and others have given in their histories.

According to this manuscript the event took place in V S 1797 (A D 1740). Jai Singh took fifteen days to reach Jodhpur and halted near Mandor. Abhay Singh refused to come in the open and agreed to purchase peace on conditions laid down by Jai Singh i.e. war expenses and other levies. There is also a mention of the participants and the numerical strength behind them who had joined both Abhay Singh and Jai Singh. Abhay Singh though well set to risk a battle had preferred to surrender ultimately with the result that the Rathors felt highly humiliated. The Emperor had taken the side of Jaipur.

॥ श्री रामजी ॥

सबत १७९७ का मीती सगवण बदी ८ नो श्री माहराजा सवाइ जंसघजी जोधपुर दुपर† चढा राजा अर्भसंघ‡ री हुकम पातसाह महमुदसाह का ये चढा सो रोज पदरा* मं १५ जोधपुर जाइ लागा अरफ मढावर की डेरा जाइ कीया मुकाम १ अर्भसजी†† स्यो राडी‡‡ करवा सारी जमीत सेती राडी करवा नै असवार फोज चढ गया तब त बीसटालो हुवो सो इ भात ठाहरो ।

राज जमीती** खरच बुग्य††-

पातसाहजी का		बखतसघ भाई नं अर्भसघ कनो मेरतो दीहनु
रोकडी	हाथी	गाव
१००००),	३	१४००
जोहार का		श्री माहराज' लीया
२५०००)		रोकतो' अर मारोठे

†ऊपर ।

‡अर्भस्यसिंह ।

*पन्द्रह ।

††अर्भस्यसिंहजी ।

‡‡गुड ।

**जमीयत ।

†††वगैरह ।

कीसोरसघ भाइ नै जालोर को प्रङ्गनु दीनु	२००००००)	१
गाव	भरुदो	इनसो
४००	१	१
	प्र० अजमेर का प्रगना	
	-१०	

इ भात ठहराइ तदी कूच कीयो ।

राडी कोइ हुइ नही मी० भादवा सुदी १ बुधवार उलटा आया जति ऐती लारछी
असवार ५०००००

रुपनगर को राजा	सुरजमल जाट	राजा बषतसंघ नागोर क०
असवार:	पाला†	असवार
२०००	१०००	पाला असवार. पाला
सोसघ राठोड†	५०००	८००० ५००० ३०००
असवार	पाला	उमेदसंघ साहपुरा वाली
१०००	१०००	असवार पाला
असवार	पाला	४००० ३०००
५०००००	५३००००००	
करोली को गोपालसघ राजा	वीकानेर को राजा जोरावरसंघ	
असवार	पाला	असवार पाल
१०००	५००	४००० २०००
	 ?
सादो सेखावत	भीरणाइ का	
असवार	पाला	असवार पाल
३०००	१०००	१००० १०००
राणाजी की जमीन	घर माहराजा श्री सावाइजी क जमत	
असवार	पाला	असवार पाल
३०००	३०००	२ ००० २५०००
हाथी:	उट जुजालक*	बाणा का बुटा†
१००	५०००	५००

†शिर्वासिंह ।

‡पैदल Also पाल ।

*वीकानेर मे अँट को जाजलिया कहते है, विशेषतः वह अँट जिसमे जजुरवे (मोटी ताल 'की बन्दूकें लगी होती हैं) यह बन्दूकें फौज की खानगी का सूचन करती हैं ।

† जजुरवे वाले अँट ।

नगदी का असवार ५०००

तोषणाना की सुमारी नहीं

बुदी का राज दलेलसघ की लार*

असवार		नोकोट मारवाड		
असवार	पाला	मडोवर.	अजमेर को	पुगल
३०००	२०००	१	१	१
		जैसलमेर	पारकरगढ	अमीसुरो
		१	१	१
		जालोर	वीकानेर	इदरगढ
		१	१	१

अर अर्भसघ की लार फोज इतनी छी सो लडो कोइ नही सवाइजी की पते हुइ
असवार १५००० हाथी १५ पघादाँ १५००० 'राठोड भोत बुरा दीष'††

गिणाना ।

‡नहीं ।

*पीछे ।

†पिदल ।

††The Rathors felt highly humiliated

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

‘ॐ नम सिद्धयेभ्य नमः’^१ अथ बुद्धि-विलास^२ नाम ग्रंथ लिष्यते ॥

छप्पै : समद-विजय^३ सुत जिन सु, नमत अघ हरत सकल जग ।
 कुमर-पद हि तप-षड्ग^४, लियव कर हनिय करम-ठग ॥
 भरम-तिमर सब^५ नसन, उदय हुव तिभवन दिनकर ।
 जपि भवि^६ भवदधि तरत, लहत गति परम मुकतिवर^७ ॥
 तसु चरन-कमल भविजन^८ भमर, लषि लषि अनुभव रस चषत ।
 वह करहु नजरि मुझ परि सु जिम, सुफल फलहि हम कहि वषत^९ ॥१॥
 आदीस्वर तैं महावीर जिन लौ तीर्थकर ।
 सकल भये चौवीस, वहुरि तिनंही के गनघर ॥
 वृषभसेन^१ दै आदि अत गोतम लौ नामो ।
 चौदहसै त्रेपन जु भये^२ तदभव सिवगांमी ॥
 फुनि अरहत^३ सिध आचार्य अरु, उपाध्याय सब साधुवर ।
 है, हौंहि, ह्वं गये, तिनु नमैं, वषतराम जुग जोरि कर ॥२॥

दोहा^१ : महा विदेहनि बीस जिन, सास्वत रहे विराज ।
 तिनहि नमत सुष संपजै, जात सकल अघ भाजि ॥३॥
 वंदौं वांनी सरस्वती, मन वच तन सिर नाय ।
 जाकी क्रपा कटाछि तैं, बुद्धि वढै सुषदाय ॥४॥

छद पद्धरी : श्री गुर-प्रसाद लहि बुधि विकास,
 रचिहौं, व गृथ यह बुधि विलास ।
 तामें वरनन लषि सकल सार,
 भविजन पावेंगे सुष अपार ॥५॥

१ : B opens with ‘१ ॥६०॥ ॐ नम सिद्धयेभ्य.॥’ । २ बुद्धि-विलास । ३ विजय ।
 ४ षड्ग । ५ सब । ६ भवि । ७ मुकतिवर । ८ भविजन । ९ वषत ।

२ : १ वृषभसेन । २ भये । ३ अरहत ।

३ : १ दोहा ।

जो हैं तिहुँ लोकनिकी प्रमांन,
सो प्रथम वरन करियत सुजांन ।
प्राचीन गृथ अनुसार पाय,
स्वरवांनिकी भाषा वनाय ॥६॥

दोहा प्रथम भूमि मधि लोककी, चित्रा नांम कहात ।
तातें जोजन लक्ष यक, ऊंचे स्वर्ग^१ विष्यात ॥७॥
मद्धि जोतिषी-पटल मैं, अथिरनुकी यह हेत ।
मेर सुदरसन आदिकी, नित्ति प्रदषिणा^२ देत ॥८॥

स्वर्ग नामां

कवित्त : सउधर्म ईसांन औ सनतकुमार जानि,
बहुरि महिद्र वृह्य ब्रह्मोतर जानिए ।
लांतवः कापिष्ट शुक्र महाशुक्र है सतारि,
सहैश्वरि आंणत प्रांणत पैहचानिए ॥
आरण अच्युत भए सोलह सुरग तिन,
ऊपरि है नौ श्रीवेक तिन्हें उर आंनिए ।
तापें नौ निडोतरे^१ कं परि पांच पिच्योतरे^२,
तिन परि 'भुक्ति-सिला सिद्ध'^३ ठौर मांनिए ॥९॥

दोहा : वाही चित्रा भूमि कै, तलि भुवनालय जानि ।
जोजन लक्ष प्रमांण फुनि, तलें नरक दुष-दानि ॥१०॥

नरक प्रभा नामं

रत्न सर्करा वालुका, पक धूम तम सोदि ।
बहुरि^२ महातम सात ऐ^३, तिन तलि कही निगोदि ॥११॥

७ : १ स्वर्ग ।

८ : १ प्रदषिणां ।

९ : १ निडोतरे । २ पिच्योतरे । ३ सिद्ध मुक्ति सला ।

११ : १ नाम । २ बहुरि । ३ सातए ।

†According to the Svetambara's there are twelve "Swarga's" only, whereas the Digambara's stick to sixteen i. e. ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र, शतार In addition.

‡Is it Atlantic ?

या विधि ए सछेप से, वरनें सकल सथांन ॥

अब^१ इनको सुनिये^२ सकल, घनाकार मतिवांन ॥१२॥

चौपड़ी^३ प्रथम अनत अलोकाकास, दसौं दिसा मरजाद न जास ।

तामै लोक पुरष आकार, चौदह राजू ऊंची सार ॥१३॥

ज्यों कटि पुरष हाथ धरि दोय, फग चौड़े^१ करि ऊभो^२ होय ।

इम अलोक मै लोक कहंत, ज्यों घर मै छींका लटकत ॥१४॥

घनाकार तिन कौ सुनि लेहु, विधिवत ज्यों भाजै सदेहु ।

रजू तीन सै तेतालोस, होत जु भाष्यौ जिम जगदोस ॥१५॥

दोहा : प्रथम हि भूमि निगोदि-तलि, लांवी चौड़ी जानि ।

सात सात राजू कहौ, फुनि सुनिए गुनषांनि ॥१६॥

ऊची राजू सात है, मद्धि लोक लौं सोय ।

जेम अन्न की रासि फुनि, अर्ध^१ तरौं नां होय ॥१७॥

मद्धि लोक भुव नांम जो, चित्रा कह्यौ विष्यात ।

पूरब पछिम ऐक रजु, दक्षिण उत्तर सात ॥१८॥

तामै राजू ऐक ती, चित्राकौ लै ताहि ।

तैली राजू सात भुव, चौड़ी मांहि मिलाहि ॥१९॥

भई आठ राजू सबै, तिह आघी लै च्यारि^१ ।

ताकौं लंवी सात सौं, गुनि लीजिए विचारि ॥२०॥

सोरठा : होत गुनें अठवीस, सो गुनि ऊची सात तै ।

घनाकार जु भईस^१, रजू ऐकसौंछिनवै^२ ॥२१॥

दोहा^१ : फुनि वा चित्रा भूमि तै, ऊंची राजू सात ।

वात-बलय लौं जानि तसु, भाग दोय गिनि भ्रात ॥२२॥

वृंह^१ स्वर्ग लौं भाग यक, पहिलै घटि फुनि वाधि^२ ।

वात-बलय लौं दूसरो^३, बधि घटि लीजे साधि ॥२३॥

१२ : १ अब । २ सुनिए ।

१४ : १ चौडे । २ ऊमौ ।

१७ : १ अर्ध ।

२० : १ च्यारि ।

२१ : १ भईसु । २ छिनवै ।

२२ : १ दोहा A does not use दोहा at all ।

२३ : १ ब्रह्म । २ बधि । ३ दूसरो ।

अरिल^१ ; मद्धि लोक चौड़ी इक^२ राजू सांच है,
 ब्रह्म स्वर्ग वह चौड़ी राजू पांच है ॥
 मिलें होत छह तामें आधे लीजिए^३,
 तिनकौ लंदे सात गुने^४ जव कीजिए^५ ॥२४॥
 तबे होत इकईस सब सुनि मित जू,
 ब्रह्म स्वर्ग लौं ऊची गनों^१ नचित जू ।
 राजू साढे तीन ताहि इकईस तै,
 गुनि लीजे जैसं विधि सुनी मुनीस तै ॥२५॥
 होत जु सत्तरि ऊपरि साढे तीन हैं,
 असै ही वृ म्होतर तै गिनि लीन हैं ।
 जो वधिघटि^१ कहि आयो^२ सो घटिवधि^३ गिनों,
 राजू होय तिहैत्रि^४ साढे सो भनों ॥२६॥
 दोऊ लेहु मिलाय करो^१ इकठे सबे,
 होय ऐक^२ सौसंतालीस रजु जवै ।
 तिन्हें ऐकसौछिनवै मांभि मिलाइए,
 रजु तीनसंतेतालीस वताइए ॥२७॥
 तामें जीव अनंत भरे यम मानिऐं,
 ज्यों घट भरघौ घिरतसौं त्यौंही जानिऐं ।
 जान-पनों लषिवो है केवल ग्यान में,
 श्री जिन भाषी सो कीजे सरघां नमें ॥२८॥
 ताही कै मधि ब्रसनाड़ी^१ जु कहात है,
 ऊची चौदह राजू सबे विभात^२ है ।
 लवी चौड़ी इक इक^३ राजू ही कही,
 ब्रस जीवनि की याही मै उत्तपति सही ॥२९॥

२४ : १ अरिल छद । २ एक । ३ लीजिए । ४ गुने । ५ कीजिए ।

२५ : १ गिनी ।

२६ : १ घटिवधि । २ आयी । ३ Same as १ । ४ तिहतरि ।

२७ : १ करो । २ एक ।

२९ : १ नाडी । २ विष्यात । ३ एक एक ।

या विन लोकाकास मद्धि जे^१ ठौर है,
 तहां इकेंद्री ही उपजत नहि और है।
 लोकाकास तणी विधि ऐसं जानिएं,
 गृथनि कै अनुसारि कही सो मानिएं ॥३०॥

चौपई . परि यह लोक जु पुरषाकार, वात-वलय कै है आधार।
 तिन के नाम आदि सुनि अबै, तीन वलय तं वेढ्यौ सबै ॥३१॥
 प्रथम घनोदधि पवन कहात, गऊ-मूत्र सस वरन लषात।
 मोटो जोजन वीस हजार, सब पिरथीतलि वलयाकार ॥३२॥
 दुतिय वलय घन ताकौ नाम, मूग वरन सोहै अभिरांम।
 और घनोदधि-सम लै जानि, त्रितिय वलय तन नाम वर्षानि ॥३३॥
 पंच वरन^१ है ताकौ रंग, और सकल जानौ वह ढग।
 पिंड^२ भयो^३ सब साठि हजार, बड़ा जोजनां मोटी सार ॥३४॥
 ऊपरि सिद्धषेत्र है जहां, इती मुटाई^१ जानौ तहां।
 वात घनोदधि फुनि घनवात, चवहूँ सहस धनुष रे भ्रात ॥३५॥
 त्रितिय वात तन धनुष प्रमांन, पंद्रहसंपिच्चेहतरि^१ जान।
 तिनमै^२ सिद्धन के सिर लगे, इम भाषी गनधर गुन पगे ॥३६॥
 अब सुणि मद्धिलोक-विस्तार^१, दीप समुद्र असंषि मुभार^२।
 तिन मधि जंबूदीप प्रधान, ज्यों सरीर मधि^३ नाभि प्रमांन ॥३७॥
 गोल जानि तिह वलयाकार, चहु दिसि जोजन लक्ष प्रसार।
 मेर^१ सुदरसन ताकै मद्धि, ऊचौ^२ जोजन लक्ष प्रसिद्धि ॥३८॥
 ताकै दक्षिण उत्तर^१ वीर, षट परवत जु परे मनु तीर।
 पूरव पछिम तिनके छोर, लवणोदधिमै परे दुवोर ॥३९॥
 जिनतं भए सात सुभ षेत, तिनकी नाम सुनौं करि हेत।
 भरतषेत्र^१ दक्षिण दिसि जानि, औरावत ऊत्तर दिसि मानि ॥४०॥

३० : १ जो ।

३४ : १ वरण । २ पिंड । ३ भयो ।

३५ : १ मुटाई ।

३६ : १ पिच्चेहतरि । २ तिनतं ।

३७ : १ विसतार । २ मद्गार । ३ विधि ।

३८ : १ मेरु । २ ऊचो ।

३९ : १ उत्तर ।

४० : १ क्षेत्र ।

हिमवत कह्यौ चौ गुणों सोय, है रनि वत तिम उत्तर जोय ।
 क्षेत्र जुहरि यातै चौगुणों, रम्यक उत्तर दिसि फुनि सुणों ॥४१॥
 वीचि विराजै क्षेत्र विदेह, चौसठि गुणों ताहि गिरि^१ लेह^२ ।
 अत्र परवत के कहिए^३ नाम, हिमवन भरथ वोर अभिराम ॥४२॥
 सिषरी अँरावत दिसि लग्यौ, महा हिमौन दषिण^१ दिसि पग्यौ ।
 रुकमी ऊत्तर दिसिकों होय, नषिध भरथ की वोर सु जोय ॥४३॥
 नील उत्तर दिसि ही कों जानि, ऐ सव भूधर क्षेत्र प्रमान ।
 तिनके भाग ऐक सौ निवै, तामे भरथ भाग एक हिवै ॥४४॥
 जोजन पात्र सै रु छव्वीस, इक जोजनकी कला वनीस^१ ।
 तिनमें कला लेहु षट कहै, भरथ अँरावत परमित यहै ॥४५॥
 भवि सुनि भरथ क्षेत्र की वात, विचि विजियारध परचो विष्यात ।
 तामै गुफा दोय तू जानि, तिनकी तरह सुनौ सुषदानि ॥४६॥
 हिमवन परवत परि द्रह देषि, पदम नाम तिह तनौ विसेषि ।
 तिह तें या दिसि नदी दोय, गंगा सिध^१ नीकसी सोय ॥४७॥
 गंगा विजियारधकों भेदि, पूरव दिसि चाली विनि वेदि ।
 दुतिय गुफा विजियारध मांहि, सिधु चली पच्छिम दिसि जाहि ॥४८॥
 तिनते भरथ - क्षेत्रकें माहि, षट षंड^१ पडे^२ सु संसय नाहि ।
 तिनमें षंड मलेछ जु पांच, आरज्य^३ षड ऐक है सांच ॥४९॥
 ताके मद्धि जानि इक देस, नाम दुढाहर^१ वसै विसेस ।
 सरिता^२ सरवर तामे घने^३, कूप वावड़ी सुंदर वने ॥५०॥
 वृद्ध^१ अनेक जाति के भलै, छहु रति में जे फूल फलै ।
 तहा पुरी अवावति वसै, इंद्रपुरी हू तें अति लसै ॥५१॥

४२ १ गिति । २ लेहु । ३ कहियतु ।

४३ : १ वक्षिण ।

४५ . १ उनीस ।

४७ : १ सिन्धु ।

४९ : १ षडे । २ पडे । ३ आरजि ।

५० : १ दुढाहर । २ सरता । ३ घने ।

५१ : १ वृद्धि ।

चहु^१ दिसि परवत वड़े उतंग^२, तिन परि षाई कोट सुचंग ।
 मद्धि पुरी कै सुंदर भौन, तिनमै वसै सुषी सब पौनि ॥५२॥
 गिर परि महल भूप के वड़े, मांनों सुर^३-विमान ऐ^२ षड़े ।
 महलनतै गिर परि कछु^३ डूरि, किल्ला ऐक वनायो मूरि ॥५३॥
 नाम सवाई जेगढ दियौ, भूप सवाई जैस्यंघ कियौ ।
 तामै सोहत महल सुवाग, तोप कोट परि है बहु लाग ॥५४॥
 राजी सब पुरी के लोग, भूपनि-तराी नीति-संजोग ।
 ईति^१ भीति नहि ब्यापत जहां, दुषी न दीसै कोऊ तहां ॥५५॥

छंद वरवै : तहां भऐ कछवाहे, छत्री^१ भूप ।
 तिनकी कीरति जग मै, अधिक अनूप ॥५६॥

नृप वंस वर्नन

दोहा : वड़े वंस श्रीराम के, कछवाहे दल साजि ।
 आऐ नरवर तै कियौ, देस ढुढाहड़ राज ॥५७॥
 प्रथम राज काकिल कियौ, मात्रि मवासे तोड़ि ।
 वचे भोमिया ते सबै, मिले आप कर जोड़ि ॥५८॥
 तिनकै पाटि हणू नृपति, भऐ मनौ हनुमान ।
 वहुरचौ जानड़दे भऐ, तिनकै पाटि सु जान ॥५९॥
 फुनि पज्जवण भऐ नृपति, महावली सांमंत ।
 तिनकौ वल जस प्राकरम, बहु कविजन वरनंत ॥६०॥

सोरठा : भऐ मलेसी भूप, ग्यारह सै इक्यांवनै^१ ।
 कीन्हौ राज अनूप, वैठि पुरी अंवावती ॥६१॥
 फुनि वीसल भूपाल, राज कियौ बहु^१ सैन सजि ।
 तिनकै पाटि विसाल, राजे राजा राजदे ॥६२॥

५२ : १ चहुं । २ उतंग ।

५३ : १ स्वर । २ ए । ३ कछु ।

५५ : १ इति ।

५६ : १ षित्री ।

५९ : १ हणू ।

६१ : १ only इ the rest damaged.

६२ : १ ends damaged the word thus lost

फुनि नृप केलहरण नांम, वहरर्यो कूतिल नृप भये^२।
 तिनके गढ़ अभिराम, अरवलीं सोभित हैं^३ प्रगट ॥६३॥
 फुनि जौंगसी महीप, तिनके पाटि भये नृपति ।
 उदैकरण अरवनीप, तिनके पटि^१ नरस्यघ हुव ॥६४॥
 भये भूप वरणीर, तिनके^१ पट^२ उधरण उरे^३ ।
 तिनके पटि धरधीर, चंद्रसेरिण हुव चद्रसम ॥६५॥
 तिनके पटि भूपाल, प्रथ्वीराज^१ उद्यौत क्रिय ।
 सव दुरजन के साल, भये प्रजापालन निमति ॥६६॥
 द्वारावति की छाप, म्हाधरम^१ ध्वज भूप के ।
 जोगी-तरौ मिलाप, घर वैठां ही ऊ घडी ॥६७॥
 तिनके वारह पुत्र, भये महावल प्राक्रमी ।
 जीति लये^१ सहु सत्रु, बांधी वारह कोटडी ॥६८॥

छद प्रथीराज के पाटि भारमल वैठ्यो^१ अति सोहै ।
 तिनके पटि भगवंतदास हुव ता सम और न को है ॥
 जिनके^२ पुत्र भये जग में नृप मानस्यंघ अरवतारी ।
 तिन दिल्लीपति पातसाहिकी^३ सवही वात सुधारी ॥६९॥
 पूरव पछिम दक्षिण^१ उत्तर^२ च्यारचौं दिसि पजाई^३ ।
 लै लै जीति भूमि भूपनि की दिल्ली तलें लगाई ॥
 सवही भुलक माहि जिनको जस अरवलीं^४ नर तिय गावें ।
 तिनकी सपति साहें^५ सुभटनु^६ कौ जसु कछुक सुनावें ॥७०॥

६३ १ कूतिल । २ भये । ३ है ।

६४ १ पाटि ।

६५ १ जिनके । २ पटि । ३ भये ।

६६ १ प्रथीराज ।

६७ १ महाधम्म ।

६८ १ लिये, B includes two additional Dohas and the verse order changes accordingly

दोहा—प्रथीराज नृप जांम, पूरणमल भोवौ रतन ।

कियो राज परिनाम, कारणी कविन ना घरयो ॥६९॥

आसकरण इक पुत्र, दौरि जाय पतिसाहिपे ।

नलवर राज पवित्र, लैके कियो जीति षतु ॥७०॥

६९ १ बैठो । २ जिन्हके । ३ पातिसाहि ।

७० १ दक्षिन । २ उत्तर । ३ पंजाई । ४ अरव लीं । ५ साहंस । ६ सुभटन ।

कवित्त जेतक^२ विलायत में ऐक^३ उमराव^४ ताकै,
 अन्योक्त^{१†} : तेती वीचि पांडवन मांडचौ कुरषेत है ।
 कहै 'कवि गंगधर' आंगन कौ जैसौ लेषौ,
 तैसे कीन्हें सात हैं समुद्र सरासेत है ॥
 ऐती भूमि काकं भई कौनें पातसाहि लई,
 जेती यह पातसाहि^५ लई अर लेत है ।
 मेरे जानि राजा मान तोरि तोरि आसमान,
 जोरि जोरि जमीतें जलालदी कौ देत है ॥७१॥

पुन कवित्त : काहू कै करम पातसाही उमराई राई,
 काहू कै करम राज-राजनिकौ नेत है ।
 काहू कै करम हय हाथी परगनें पुर,
 काहू कै करम हेम हीरनि कौ केत है ॥
 हरि हरि^१ जोई जोई जाही कै लिलाट लीक,
 सोई सोई आनि ईह दरवारि^२ लेत है ।
 कूरम नरिंद मानस्यंघ महाराजा,
 तेरे करकं भरोसं करतार^३ लिषि देत है ॥७२॥
 पीछे तौ न होयगौ^४ जुगति यह जानियत,
 कीन्हौं जव सेत राम हेत जाकौ नल है ।
 कूरम नरिंद पुरषारथ की सीम सुनै,
 जाके भुजदंडनि मै भीमको^२ सौ बल^३ है ॥
 पूरव की वोर छित छोर लौं विरचि वीर,
 काटि काढ्यौ अमित पठाननि कौ दल है ।
 लोहू भरचो षरग^४ पषारचौ मानस्यंघ, भयो
 तव तै सुषारी मनौ^५ सागर कौ जल है ॥७३॥

७१ : १ अन्योक्ति । २ जेतिक । ३ एक । ४ उमराव । ५ अकवर ।

७२ : १ हर । २ दरवार । ३ करतार ।

७३ : १ हौयगो । २ भीमको सौ । ३ बल । ४ षडग । ५ मानौ ।

†The author means that this couplet has been composed by some one else. The word has nothing to do with अन्योक्ति alankara.

छुपै : कनक-कलस सज्जिए^१, नगर मंडिए^२ विविधि विधि ।
 पदमिनि यम पिण्डिए^३, उदित भई मनहुँ- नऊं निधि ॥
 नर नारी मन मुदित, हरषि मुष मंगल गांवहि ।
 जिनु थप्यो लंकेस कहै, सोई दछिछन आवहि^४ ॥
 इम सिंधु सकुचि पंडो^५ कियो, जो न सीसे पत्थर^६ तिरै ।
 रघुवंस अंस नृप मान सुनि, भस्मीषन फूल्यो^७ फिरै^८ ॥७४॥

सोरठा : तेग मान की मांहि, अगनि^१ अनीषी नीकलै ।
 त्रण^२वाला^३वचि जांहि, जलवाळा^४जलि जलि मरै ॥७५॥

दोहा^१ : मानस्यघ नृप कै भए^२, जगतस्यघ^३ सुकमार ।
 बालपनै गढ कांगड़ा^४, तोडत^५ लगी न वार ॥७६॥
 कवि काला माठा^१ तुरी, रज विन^२ रजपूतांह ।
 जगत मान नरिद-रै^३, आघ^४ कियो ऐतांह ॥७७॥
 भए^१ कवर जगतेस कै, महास्यंघ सिरताज ।
 लघु सुत भूपति मान^२ कौ^३, भावस्यंघ किय राज ॥७८॥
 बहुरि भए महास्यंघ कै, सुत नृप जयस्यंघ नाम ।
 दक्षिण दिसि जीतन^१ चढे, मनहु^२ लंकको रान ॥७९॥

छुपै : तिन तिलंग हुव भस्म अस्म^१ अफजल वर फट्टिव ।
 लग्ग वग्ग वंगलांत नद द्रावडी दवट्टिव^२ ॥
 मृग महीप घन घूमि घूम^३ घर^४ मडल मछिछव^५ ।
 धिरत पांत पुंम्मान कोन लक्कर जिम डट्टिव^६ ॥

- ७४ १ सज्जिए । २ मंडिए । ३ पिण्डिए । ४ आवहि । ५ पंडो । ६ पत्थर ।
 ७ फूल्यो । ८ फिरै ।
 ७५ १ आगि । २ त्रिण ।
 ७६ १ दोहा । २ भए । ३ कागरा । ४ तोडत ।
 ७७ : १ माठा । २ विनि । ३ कै । ४ आघ ।
 ७८ १ भए । २ मान । ३ कै ।
 ७९ : १ जीतण । २ मनो ।
 ८० : १ missing । २ दवट्टिव । ३ घूम । ४ घुर । ५ महिव । ६ डट्टिव ।

†The defeated foes holding grass in the mouth.

‡The envious.

*The famous temple of 'Jagat-Shiromani' at Amber is assigned to Prince Jagat Singh who died during the life-time of his father.

सिव सिंघ^० अग्र्य जग्गी अवनि, यम जगत्त जारन लयव ।
दल दलति^८ जलद जयसाहि-दल, नहि पिष्पिय कब बुझि^९ गयव ॥८०॥

कवित्त फौजन^२ तें आपन दवाय राषी दसौं दिसि,
अन्यौक्त^१ : अरनिकौं राषी न निसांनी कहूं हिरकी ।
साहि के सुभट जयस्यंघ गिर मेर गुर,
गाहि गाहि गाही ठौर राषी न गुमर की ॥
कीनौं बोल ऊपर प्रताप दीन हू पर, सु—
भूप तें पाघ राषी भूपनि के सिर की ।
थर थर थार को^३ सौ पारौ थहरात^४ हीं,
सु तैही लगि थांभ पातसाही^५ थांभि थिर की ॥८१॥

दोहा : भए^१ भूप जयस्यंघ कै, रामस्यघ महाराज ।
तिनके^२ संगि सदा रहे, कविजन^४ सुभट समाज ॥८२॥

प्रताप वर्नन

कवित्त : किलकत काली जुगननि कै^१ जसन होत,
'सुकवि धुरंधर' जमाति जुरें देवी की ।
और हूं कहां लौं कहीं दौर^२ राम कूरम की,
दविगे दिगज देव-दांनव न ऐवी^३ की ॥
घसकी धरनि ड़ाढ मसकी ड़ढायर की^४,
कसकी कमठ-पीठि^५ रसम रकेवी* की ।
दिग्ग-दल भारकै दवाएँ वे-सम्हार ह्वै कै,
भयौ भांति सिमटि भुजगम जलेवी की ॥८३॥

दोहा^१ : भए^२ राम नृप कै कवर, किसनस्यंघ जिम भांन ।
तिनके तेज कृपान^३ कौं, जानत सकल जिहांन ॥८४॥

८० : ७ स्यंघ । ८ Adलिति । ९ Aकव बुझि ।

८१ : अन्यौक्ति । २ फौजन । ३ कौं । ४ थहरात । ५ पातिसाही ।

८२ : १ भए । २ तिनके ।

८३ : १ कै । २ दौर । ३ ऐवी । ४ ड़ढायरकी । ५ पीठि ।

८४ : १ दोहा does not occur in A । २ भए । ३ कृपान ।

†cf Bhusan 'थारा पर पारा पारावार यों हलत है' (Shiva-Bavan)

‡Kulapati Misra was a Court-poet of Ram Singh

*The convex back of the mythological crab became concave like a dish.

कवरपदै किसनेस कै, विसनस्यंघ हुव पुत्र ।
राज कियौ अवावती, जीति सकल षल सत्रु ॥८५॥

छुपै जिन जट्टन अल्लो हुसेन भल्ली विधि कुट्टिव ।
अन्योक्त^१ : जिन जट्टन सफोषांन नद बहु भात^२ अहुट्टिव ॥
जिन जट्टन मैहरावषांन-गुमांन^३ गुमायो^४ ।
जिन जट्टन मुकरब्विषांन कर कुट्टि^५ षिलायो ॥
'कवि राम' वहादरषांन सौ, जंग जुट्टि वसु लुट्टि लिय^६ ।
नृप विसनस्यघ सोइ^७ तेग वर, जट्ट थट्ट दहवट्ट^८ लिय ॥८६॥

दोहा^१ : विसनस्यघ नृपकै भए^२, श्री जयस्यंघ नरिंद ।
तिनहि सवाई पद दयो, दिल्ली सुरपति हिंद ॥८७॥
संगि लिए^३ चतुरंग दल, रथ पायक गज वाजि ।
कूरम श्री जयस्यघ नृप, चढे गढों पै साजि ॥८८॥

छंद मुजग प्रयात : गढों पै चढे भूप वालापने^१ मै,
दिसा दक्षिणी परवतों के गने^२ मैं ।
किला तोरि कै षेलना^३ षेलना^४ से,
मनों वालकों नै^५ किये^६ हैं तमासे ॥८९॥
लरे सैद वे दौरिकें सांभरी मै,
मिलाये^१ जमों सैं तिनेहूं घरी मैं ।
भिरे साहिजादे भयो जंग भारी,
तहां भूपहू कोपि कीन्हि^२ सवारी ॥९०॥

८६ . १ अन्योचित । २ भाति । ३ गुम्मान । ४ गमायो । ५ कुट्ट । ६ किय ।
७ सोई । ८ दह वट्ट ।

८७ १ दोहा । २ भए ।

८८ १ लियें ।

८९ १ वालापनें । २ गनें । ३ षेलना । ४ नै । ५ किये ।

९० १ मिलाए । २ कींनी ।

†Fort of Khelana or Vishalgarh on the crest of the Sahyadri hills in the Deccan. It is said that the title "Sawal" was conferred upon Jal Singh, when hardly sixteen, by the Emperor Aurangzeb in recognition of his personal qualities shown by him during the Khelana campaign (A.D 1702)

चलाए घने वांन^१ आकास छाए,
 तमासे^२ घनें जोगिनी जक्ष आए।
 कियो जुद्ध भारी घने^३ सत्रु मारे,
 वचे जे तिनोंनै^४ तिने दत धारे ॥६१॥
 बड़े भूप भू में हुते मारवारी,
 तिन्हों पै चढी कोपि कै फौज सारी।
 लगे पाय वे छांडिके^१ राजघांती,
 चहूं चक्र नै सूप की आंन मांती ॥६२॥

दोहा^१ : मांती आंन सबै नृपति, आए अधिक उमंगि।
 पाय लागि विनती करी, हमें राषिऐ संगि ॥६३॥

वांन वर्नन (अ०^१) ॥

कवित्त : कूरम नरिंद जयसाहि वाहें परकै,
 सु पार होत पल मै सहज सूकी परकै।
 चलत सलूक चुकुटी^२ के और कर के,
 सुवकतर टोप करी काच जिम^३ करके ॥
 'सूरजि'^४ भनत करै घाव जाही धर-कै,
 सु वाकौ हियौ नैक वेर दोय-तीन धरकै।
 मालिम जगत मै लगत जाही^५ सर-कै,
 सु हाथी पैड़ पाच सात पाछे पाय सरकै ॥६४॥

कवित्त^१ : कोप करि कूरम सवाई जयस्यंघ नृप,
 चढ्यौ जोधपुरवारे अर्भस्यंघ मारु^२ परा।
 फौजन की गरद न दीसै भांन^३-मंडलहू,
 सिंघ^४ सूकि गऐ को गनत नदी नारे सर ॥

६१ : १ वाण । २ तमासे । ३ घनें । ४ जे जिन्होंने ।

६२ : १ छांडिवे ।

६३ : १ दोहा ।

६४ : १ missing । २ चिऊटी । ३ जिमि । ४ सूरज । ५ जांही ।

६५ : १ कवित्त, missing in A । २ मारु । ३ मानु । ४ सिंधु ।

दसौं दिगपालन हूं दातन^५ तिनींका^६ धरे,
 सुरपुर नागपुर दोरे^७ जात दरवर ।
 दहसत्ति^८ षाय रजपूतन की बांह^९ छांह^{१०},
 आय मिलि ड़ांड^{११} भरि वच्यौ नाथ मुरघर ॥६५॥
 जंग सुलताने जहा^{१२} पूरव परव पाय,
 अरव धरव दल जोरे पर दोह पे^{१३} ।
 'सुरिज' भनत तहां^{१४} आगे भयो जयसाहि,
 सिधुर ठिलत यौ^{१५} पिलत लोह लोह पै ॥
 गिद्धि^{१६} सिधि^{१७} सथ्यन अघांनों स्यंभू मथ्यन^{१८},
 सुवीर निज हथ्यन^{१९} चलावै तीर छोह पे ।
 मंडल कमान कै वितुंड पे लसत मनौ,
 उग्यो^{२०} है प्रचंड मारतंड विधु^{२१} कोह पे ॥६६॥

नगर उत्तपति^१ वरनन^२

दोहा^३ छद नगर वसायो यक नयो, जयस्यघ सवाई,
 निसानी : जाकी सोभा जगत में, दसहौं दिसि छाई ।
 ताकी वरनन करनको, हुलसी मति मेरी,
 इंद्रपुरी हू जानियो, ताकी है चेरी ॥६७॥

कवित्त कूरम सवाई जयस्यंघ भूप सिरोमनि,
 सुजस प्रताप जाकी^४ जगत में छाया^५ है ।
 करन-सौ दानी पांडवन-सौ क्रपांनी महा,
 मांनी मरजाद मेर राम-सौ सुहायो है ॥
 सोहै अवावति की दक्षिण^६ दिसि सांगानेरि,
 दोऊ वीचि सहर अनौपम^७ वसायो है ।
 नाम ताकी धरयो है स्वाई^८ जयपुर,
 मांनों सुरनि हीं^९ मिलि सुरपुर-सौ रचायो है ॥६८॥

६५ : ५ दातन । ६ तिनींका । ७ दोरे । ८ दहसत्ति । ९ बाह । १० छाह । ११ वाड ।

६६ : १ तहा । २ दोहपे । ३ जहा । ४ मयो । ५ गिधि । ६ सिद्धि ।

७ मथ्यन । ८ हथ्यन । ९ उग्यो । १० विधु ।

६७ : १ उत्तपति । २ वरनन । ३ missing ।

६८ : १ ताकी । २ छाया । ३ दक्षिण । ४ अनौपम । ५ सवाई । ६ ही ।

७ ॥१००॥ ।

छंद पद्धती : च्यारघौ^१ दिसि रच्यौ उतंग कोट,
 तापरि कगुरनि^२ की वनी जोट ।
 तिह तलि चौड़ी षाई वनाय^३,
 श्रौड़ी मनु सरिता चली जाय ॥६६॥
 दरवाजे ऊचे^१ वने^२ गोष,
 पौरिया वंठि तिह^३ करत जोष ।
 चौपरि[†] के कीन्हे हैं वजार,
 विचि वीचि वनाए^४ चौक चार ॥१००॥
 ल्याए^१ नहैरि[‡] वाजार मांहि,
 विचि मैं ववे गहरे रषांहि ।
 चौकनि मै कुंड रचे, गंभीर,
 जग पीवत तिनकों मिष्ट नीर ॥१०१॥
 हाटिन के विचि रस्ता^१ रषाय,
 दीन्हे^२, ते सूघे चले जाय ।
 बहु वने हवैली कूप वाग,
 सुंदर तिनु लषि मन लगत लाग ॥१०२॥
 धनवांन जु व्योपारी कितेक,
 बहु देस सुदेसनि ते आऐ अनेक^१ ।
 ते करत विराज अति निसक^२ होय,
 परदेस सुदेसहि जात कोय ॥१०३॥
 मिलि साहूकार घनाडि मिल,
 वागनि मैं गोठि करै नचिंत ।

६६ : १ च्यारघौ । २ कगुरनि । ३ षनाय ।

१०० : १ ऊचे । २ वडे । ३ तेंह । ४ वनाए ।

१०१ : १ ल्याए ।

१०२ : १ रसता । २ दीन्है ।

१०३ : १ बहु देसनि ते ल्याए अनेक । २ निसक ।

†In accordance with the Hindu tradition of town-planning i, e. two wide streets run through the city intersecting at right angles.

‡This canal was brought from नाला अमानीशाह in the west of the new city—नायावतों का इतिहास, हनुमान शर्मा p. 166.

या विधि सौ^१ सुष^२ निसि दिन वितात,
देवन^३ समांन नर तिय लसात ॥१०४॥

छद . आऐ निजूमो[†] जोतिगी, वहुरघौं फिरगी[‡] कौतिगी ।
तिन रच्यौं जंत्र विसाल है, तामें ग्रहों^१ की चाल है ॥१०५॥
तिथिपत्र* मिलि ठान्यौं नयौं, सिरिनांम भूपति की द्यौं ।
सो^१ 'जयविनोद' कहात हैं^२, जग मांहि सौ विष्यात है ॥१०६॥
वहु विप्रि विद्यावांन ते, आऐ दिसा-विदिसान^१ तें ।
साहित्य तर्क सु न्याय के, पाठी प्रवीन सुभाय के ॥१०७॥
मिलि बैठि बें चरचा करै^१, 'वांनी सुरनि की^{††}' उच्चरै^२ ।
बोलै सु अधिक मरोर सौं, बहु जोर करि कं सोर सौं ॥१०८॥
सुनि भूप चरचा तिन-तनी^{‡‡}, हिय हरषि कं कवि गुनी ।
धव देत तिनहि अपार है^१, असी अनेक सभा रहै^२ ॥१०९॥
भाषा कवी परवीन ते, जस करत नव प्राचीन ते ।
वारहट** भाट^{††} सुभावतें, बहु पढत कवि चित चावतें ॥११०॥
गज वाजि धन सिरपाव ते, वकसीस लहि गुन गावते ।
विचरै सु पर हू देसते, आसिषा देत हमेस ते ॥१११॥

१०४ : १ सुष । २ सौं । ३ देवनि ।

१०५ : १ ग्रहों ।

१०६ १ श्री । २ है ।

१०७ १ दिसानि । २ ते ।

१०८ १ करै । २ उच्चरै ।

१०९ १ हैं । २ रहै ।

†Astrologers Najum (Astrology) in Persian Ancient Hindu Kings kept astrologers at their court. Astrology was a favourite subject among the Muslim Sultans also who had full faith in the Heavenly bodies.

‡Universally accorded to Europeans (the Franks) In India It has a prejudicial significance but not everywhere.

*Calendar

††Sanskrit

‡‡Mark the use of genitive तनी ।

**The obstinate family Charana who won't yield till his reward is obtained by him i e he dose द्वार हठ ।

→A family bard, A 'Bhat' is different from a 'Charana' in that his यजमान may be a non-Rajput also while a Charana accepts the patronage of a Rajput गढ़पति only.

छंद पद्धती :

वहु विधि के कारीगर अनूप,
परिवार सहित बुलवाय भूप ।
तिनकों^१ पुर मै दीन्है^२ वसाय,
हासिल^३ सबकों माफी कराय ॥११२॥
यह सुजस बढ्यौ चहुधां अनंत,
आए बहु जन तिनकी न अत ।
व्यौपार करन लागे अनेक,
बहु भातिन^१ के करि करि विवेक ॥११३॥
कहुं महर^२ रुपैया^३ लेत देत,
जौहार विकत सुवरन समेत ।
कहुं वख पाटके बहुरि स्वेत,
मैहमूदी^२ षासा^३ तनसुषेत* ॥११४॥
कहु पसमीना फुनि विकत पान^१,
कहु^२ विकत किराने^३ बहुरि धान ।
कहुं लिएं कसेरा घात पात्र^४,
वेचत तिनमै नहि भूठ मात्र ॥११५॥
कहुं गंधी अत्तर वेलि तेल,
वेचत मिस्सी^{††} फुलवा फुलेल ।
कहु^१ हलवाईगर वणिक रूप^२,
वेचत जु मिठाई करि अनूप ॥११६॥

११२ : १ तिन्हकों । २ दीन्हें ।

११३ : १ भातिनु ।

११४ १ A रुपैया । २ मैहमूदी । ३ षासे ।

११५ १ पान । २ कहु । ३ किरानें । ४ पत्र ।

११६. १ कहु । २ रूप ।

†Taxes in general

‡Gold coin bearing the seal of the Maharaja.

*All the three varieties find a mention in 'Ain-i-Akbari' of Abul Fazl. (Ain 32)—
Blochmann & Jarrett.

††A powder made of vitriol with which women blacken the space between their teeth
High class ladies, used antimony for darkening their eye lashes. See Jayasi's description

“छोरहु जटा, फुलायत लेहू, भारहु केस, मकुट सिर देह ।

काढ़हु कथा चिरकुट-लावा, पहिरहु राता दगल सोहावा ॥” (Ratansen-Padmavati khand)

मेवा परदेस सुदेस के जु,
 बहु लेत देत करि करि मजेज ।
 कहूं वरणत पारिचां जरीवाव,
 अति गर्व भरे नहि देत जाव ॥११७॥
 जरदोजः कहूं सीवत वितान^१,
 सिरपावन* के बहु वख-थान ।
 रगरेज रंगत कहूं पट सुरग^२,
 लहरिया जु वांघत करि उमंग ॥११८॥
 कहूं षत्री छीपे चूनरीन,
 पोमचो^{††} वांघि वेचत प्रवीन ।
 कहूं चूरा[‡] चित्रत है चतेर^{**},
 कहु वेचत है तिनको लषेर ॥११९॥
 बहु वसे आय कै^१ सिल्पकार^२,
 बहु भातिन के घड़ि संग सार ।
 देहुरे और मंदिर जु आदि,
 तिनको लावत करि सिल्प यादि ॥१२०॥
 कहु वेजारी^{†††} बहु व्यौत साजि,
 ते चुनत चुनांवहार^१ काजि ।
 कहु^२ घड़त^३ ठठेरे^४ घौंस राति^{**},
 घन श्रावत मनु दादर[‡] बुलात ॥१२१॥

११८ . १ बितान । २ स्वरग ।

११९ १ चितेर ।

१२० . १ कै । २ सिल्पकार ।

१२१ : १ चुना । २ कहु । ३ घड़त । ४ A चतेरे ।

†Embroidery

‡Gold embroidery

*Full-dress.

††Ladle's scarf.

‡‡Bangles.

**Painter.

+Masons [वेजारी ?]

++Day and night.

‡Frogs.

कहुं रतन-जड़ित^१ जड़िया^२ सुनार,
 मुलमची[†] वेगड़ी[‡] सिकलगार* ।
 वस्मागर बुनगर वरक साज,
 कहु वेचत गुड़ी^{††} पतंगवाज ॥१२२॥
 काछी कलार^{‡‡} लोहे लुहार,
 मोची कहुं जीन रचै^१ संवार ।
 वढई पिरजापति^{२**} आदि श्रौर,
 व्यौपारी फुन कसवी करोर ॥१२३॥
 छत्री ब्राह्मण अर वैस्य सूद्र,
 च्यारि हू^१ वरण के गुण-समुद्र ।
 सब सुखी सूर सायर प्रवीन,
 बहु चतुर वसै तिनमें न दीन ॥१२४॥
 बहु-मोल सु कोमल वख अंग,
 भूषन मणि-जटित सुवर्ण संग ।
 जरवाफ^{†††} आदि पहरे वनाय,
 'नर लसत मनौ सुर^१ वसे आय ॥१२५॥
 नारी सुंदर अति चतुर चार,
 भीने पट^{††††} भूषणजुत सिंगार ।

- १२२ : १ जडत । २ जडिया ।
 १२३ : १ रचै । २ परिजापति ।
 १२४ : १ हौं ।
 १२५ : १ स्वर ।

†An artisan expert in silver or zinc plating.

‡Sk वैकटिक A diamond cutter.

*An artisan who sharpens the blades

††cf. Bihari Satsal. "उडी गुडी लखि ललन की, अगना अगन माह ।
 वौरी लो वौरी फिरत, छुवति छबीली छईह ॥३५॥"

An undated Malhilli song refers to kite (गुड़ी) thus .

"गुड़ी उडै आकाश मे, नागा हमरा पास मे ।"

‡‡Wine-seller.

**A potter.

†††Embroidery.

††††Clad in fine clothes.

सुकुमार स्वकिय पिय मन हरंत,
 देवांगना^१ न समता करंत ॥१२६॥
 पुर-छोरा^१ वशी वारांगनां^२ सु,
 बहु करत नांच मनु अपछरा सु ।
 तिनकौ लषि सुनि संगीत-गांन,
 बहु वेत रसिक जन रीभि दांन ॥१२७॥
 श्रव सुनहु भूप संपति वयांन,
 वरनों कछू क मोमति प्रमांन ।
 यक^१ हुतौ वाग तिंह^२ जै-निवास,
 नृप रच्यौ वडै जयस्यंघ^३ तास ॥१२८॥
 ताकौ लषि नंदन-वन लजात,
 जल-जंत्र फुहारे बहु छुटात ।
 तिनतै ग्रीषम^१ की मिटत झार,
 विन समै होत पावस बहार ॥१२९॥
 मधि हैं अनेक पादप रसाल,
 कहू^१ नूत^२ नूत नूतनां^३ तमाल ।
 कहू^३ वकुल^४ केलि अंजीर बेर,
 कहू सेव नासपाती नरेर ॥१३०॥
 कहू पारिजात पीपलि^१ लवग,
 पिस्ता विदांम केसरि सुरंग ।
 कहू पनस पुंगि^२ महूवा अरिष्ट,
 गूलर कपिथ^३ दाड़िम सुमिष्ट ॥१३१॥

१२६ : १ देवांगना ।

१२८ . १ इक । २ तंह ।

१२९ : १ ग्रीषम ।

१३० : १ कहू । २ नूत । ३ कहू । ४ वकुल ।

१३१ . १ पीपरि । २ पंग । ३ कपित्य ।

†At the extremity of the city walls

‡ Prostitutes

*Mirza Raja Jai Singh (b. 1611—d 1667 A.D.)

††Mark the 'yamak' here.

कहुं ताल हिताल सु वीजपूर,
 भल्लात-वेलि परवर षिजूर^१ ।
 कहुं आंमिलवेत जमूनि निव,
 करणा नारिंग सु पक्क विव ॥१३२॥
 अभया विभीति^१ आमिल छुहांर,
 कहु दाष ईष ऐला^२ अपार ।
 जाती फुलन्यौज^३ जभीर वोट,
 सीताफल मीठे हैं षरोट ॥१३३॥
 वहु फूले वृछ^१ अनेक जाति,
 करणा केतगी कदंब-पाति ।
 केवरा कुंद चंपा गुलाब,
 मचकुंद सेवती मोगराव ॥१३४॥
 कहु गुल व^१ गुला फूल्यौ नवीन,
 कहु कुसम फिरंगी गुल^२ अचीन ।
 गुललाला दाऊदी हजार,
 कहु गुलहवास रंग वहु प्रकार ॥१३५॥
 चंदन असोक कहु^१ कोविदार,
 वंधूक वहुरि सिंगार-हार ।
 ईह^२ विधि फूले वहुवृछ^३ वेलि,
 तिन मांहि भूमर मन करत केलि ॥१३६॥

अरिल सीतल मंद सुगंध पौन सच्चु पायकें,
 अन्योक्त^१ : सघन छांह मै वैठि विहगम आयकें ।
 नेन मूदि अति चैन भरे अव रेषिऐ,
 मनौ महा मुनि लीन वृहामय देषिऐ ॥१३७॥

१३२ : १ षजूर ।

१३३ : १ विभीत । २ ऐला । ३ फलन्यौ ।

१३४ : १ वृछ ।

१३५ : १ वु । २ अरु ।

१३६ : १ कहु । २ इह । ३ अछि ।

१३७ : १ अरिल only.

विरह-वेदना कहत मनो पिक टेरिकं,
 सुनत भौर हुंकार देत मन फेरिकं ।
 तरु-चेलनि के रहे फूल-फलभूलि वे,
 देखत सुर नर आत-जात मग भूलि वे ॥१३८॥
 चहुरि ताल यक^१ तालकटौरा है तरै,
 मनो सरोवर मान देषि छवि को हरे ।
 बहुरि सवाई जयसागर यह^२ नाम है,
 ताकी तीरन^३ सुभटादिका के घाम है ॥१३९॥
 विमल नीर तं भरे लषे आनंद ह्वै,
 पछी-गन तहँ विहरत आय सुछंद ह्वै ।
 चक्रवाक चातिक^१ चकोर चहु देषिऐ,
 कहं कपोत कलहंस कोकिला पेषिये ॥१४०॥
 कहं मोर नाचत छत्री करि चावसो,
 कहु सारिस कहं वुग ठाढे इक पाव सो ।
 कहं वैठि कलवक संक तजि रति करै,
 कहु द्विद्विभि कुकटनु आदि बहू षग_तिरें ॥१४१॥
 कहं करत नर कामिनि आय सनांन को,
 मनो सुरसुरी^१ आए छाडि^२ विमान को ।
 बहुरि मानसागर यक दीरघ ताल है,
 तामें सरिता मिली सु अति सोभा लहै ॥१४२॥

दोहा^१ : या विधि कछु सछेप^२ से, वरने सरवर वाग ।
 अब नृप मंदिर वर्न^३ कछु, सुनिए करि अनुराग ॥१४३॥

छंद पद्धती : लषि वाग सघन अदभुत नरिंद,
 बनवाऐ ता मधि महल-वृंद^१ ।

१३९ १ इक । २ इह । ३ तीरनि ।

१४० १ चातिक ।

१४२ १ स्वर-स्वरी । २ छाडि ।

१४३ . १ दोहा । २ संषेप । ३ वरन ।

१४४ : १ वृंद ।

सतषणो^२† कलस सुवरण^३ उतंग,
तिना^४ परि ध्वज फहरत^५ पंचरंग^६ ॥१४४॥
आंगन फट्टिक स मल पषांन,
मनु रचे विरंचिजु करि सयांन ।
दे^१ आव सलिल सम तिह वनाय,
तँह प्रगट परत प्रतिविव आय ॥१४५॥
मणि-कचन-जटि मधि करी भीति,
दुति लषी परत लषि कै पछीति ।
जँह कनक-पाट दीने^१ कपाट,
किय जटि विडूर* सोपांन वाट ॥१४६॥
मणि-षचित खंभ मधि जगमगात,
मनु रतन-सांन बहु विधि लसात ।
बहु रची चित्रसाली^१ विसाल,
राजेंद्र^२ रमत तँह सहित वाल ॥१४७॥
कवहू मणि-मंदिर मांहि जाय,
तिय दूजी लषि प्यारी रिसाय^१ ।
तव सांनवती लषि पिय हँसाय^२,
कर जोरि २ लेहँ^३ मनाय ॥१४८॥
मणि-जटित कुंभ अति जगमगांहि,
बहु भरे सुव्व^१ जल तँ लसांहि ।
दधि - दूव - धूप - जुत - हेम सार^२,
सोहत अंतहपुर द्वार द्वार ॥१४९॥

१४४ : २ सतषणों । ३ कंचन । ४ तिन । ५ फहरत ।

१४५ : १ दे ।

१४६ : १ दीन्हें ।

१४७ : १ चित्रसारी । २ राजेंद्र ।

१४८ : १ रिसाइ । २ हसाय । ३ लेहँ ।

१४९ . १ सुद्ध । २ धार ।

†The poet refers to the Chandra Mahal Palace, the following are the names of the seven storeys, Chandra Mahal, Pritam Niwas, Sukh Niwas, Shobha Niwas, Chabi Niwas, Sri Niwas and the Mukut-Mahal.

‡The royal banner of the Kacchawaha Rajputs of Amber.

*Sk. वेदूर्य ।

प्रीतम^१-निवास फुनि सुष निवास,
 बैठक दीवान सभा-निवास ।
 फुनि चंद्र-महल^२ आदि जु अवास,
 कवि करे कहां लौ वरन तास ॥१५०॥
 ऊचे दरवाजे सुगम वाट,
 कंचन-सम जटित वने कपाट ।
 लगते वनवाए चौक ईस,
 तँह रहीं कारषाने छतीस ॥१५१॥
 यह^१ हुँतौ कारषाने^२ त नौंस†,
 पारसी‡ नांम ता मद्धि दोस ।
 नृप काढि हिंदवी नांम कीन,
 गृह-संग्या* यह ठानी नवीन ॥१५२॥
 गज-ग्रह में गज मद भर लसात,
 श्रैरावत हू तिनु लषि लजात ।
 सुंडिन में ते लैके पहार,
 फँकत है पारावारा† पार ॥१५३॥
 वहु अस्व-साल^१ मधि है^२ तुरग,
 राजत है सुंदर अति उतग ।
 फेरत^३र के विनु में फिरै सु,
 मन^३ पवनहु तँ आघे कढें सु ॥१५४॥
 फुनि रतन-गृहै अरु धन-भंडार,
 तिनके वरनन कौ है न पार,
 इन आदि ग्रहै^१ जो हैं समस्त,
 भरि पूरि रही तिन मांहि वस्त ॥१५५॥

१५० १ प्रीतिम । २ महल ।

१५२ : १ यह । २ कारषाने ।

१५४ : १ अश्वसाल । २ जे । ३ मनु ।

१५५ १ अग्रहै ।

†in as much as.

‡Persian.

*Nomenclature

††Ocean

छद : मन्त्री घने^१ बुद्धिवांन है^२, जानें जिन्हें सु जिहांन है ।
 सौंघ्यौ तिन्है नृप भार कौं, हक देत -है हकदार कौं ॥१५६॥
 अंगी^३ अनेक षवास ते, अति चतुर गिनत उसास ते ।
 वहु कांम के वहु भांति के, संपति सहित सुभ कांति के ॥१५७॥
 वहु सुभट सजि आवै जहां, बैठै सभा मधि नृप तहां ।
 जैसे हुकम भूपति करै, तैसे करै नांही टरै ॥१५८॥
 इन आदि चाकर हैं जिते, हक पाय राजी ह्वै तिते ।
 प्रभु-भक्ति करि जस गात हैं, सुष माहि द्योस वितात हैं ॥१५९॥

दोहा : पाचौं विधिजुत राज परि, राजत कूरम भान ।
 रैति^४ सुषी भडार वहु, नीति सु दांन कृपांन ॥१६०॥

छ द पद्धरी . चहुधा पुर^१ कै गिर है उत्तंग,
 तिनपै गढ बनवाऐ^२ उत्तंग^३ ।
 पूरव दिसि गढ रघुनाथ^४ नांम,
 तलि तीरथ गलता है सु ठांम ॥१६१॥
 दक्षिण दिसि संकर-गढ अनूप,
 बनवायो माधवस्यघ भूप ।
 हथरोही कौ गढ दुतिय जानि,
 पछिछम^५हि सुदरसन गढ वषांनि ॥१६२॥
 उत्तर अंवावति है सुथान,
 तापै स्वाई जै-गढ महान ।
 उत्तर दक्षिण^६ की कूंग पाय,
 इक ब्रह्मपुरी^७ दीन्ही वसाय ॥१६३॥

१५६ : १ घने । २ है ।

१६१ : १ चहुधांपुर । २ A बनवाऐ । ३ अभग । ४ रघुनाथ ।

१६२ १ पछिम ।

१६३ १ पछिम ।

†Bodyguards

‡The Rayyat

*For Brahmins to reside there

कवित^१ प्रथम कुमर पदई में वड़ी जंग जीत्यों,
 प्रतापीक : कूट्यौ दल दक्षिनी^२ कौ, गहें सर चाप सौ ।
 वूंदी जिन रुंदी कोटावारे पर डंड लयो,
 सबही सराहत सवाई भयो^३ वाप सौं ॥
 विरचि वचंगे न मवासे महि मंडल में,
 संमृति विचारि जे वचंगे जय जाप सौं ।
 सवाई ईश्वरसिंघ^४ महाराज^५ नरनाह,
 रांग भयो रांनां तेरे पावक प्रताप सौं ॥१७२॥

दोहा : बहुरि पाटि बैठे नृपति, रांमपुरे तै आय ।
 भाई माधवस्यध जू, दुरजन कौं दुषदाय ॥१७३॥

कवित्त : जिन रांमपुरे में करी निज चाकरी,
 सो घरि राषी विचारि हिये ।
 फिरि पाय कं राज दुंडाहर कौ,
 सु नऊ निधि के सुष आनि लिये ॥
 भनि 'राम' क्रपाते भले ही भलै,
 अमरेस के से जिनु दांन दिये ।
 हरि ऐक सुदांमां निवाज्यो^१ कहूं,
 नृप माधव केई सुदांमां किये ॥१७४॥

सोरठा : दिये दिवाये दांन, जस प्रगट्यो दसहूं^१ दिसनि ।
 उवै जगत परि भांन, राज कियो^२ यम^३ मुलक परि ॥१७५॥
 आगं नृपति अनंत, जतन किये आयो^१ न गढ ।
 रणथंभौर महंत, सौ माधव सहजै लह्यौ^२ ॥१७६॥

कवित्त^१ : अंसी मौज कढत सवाई माधवेस कर,
 सुवरन-भर ज्यौं प्रवाह नदी नद के ।

१७२ १ कवित्त । २ दक्षिनी । ३ भयो । ४ ईश्वरस्यंघ । ५ महाराजि ।

१७४ १ वाज्यो ।

१७५ १ दसहौं । २ कियो । ३ इम ।

१७६ १ आयो । २ लयो ।

१७७ १ कवित्त अन्योक्त ।

छंद पद्वरी :

अब सुनिए भविजन वात ऐक,
 देहुरे वने पुर मै अनेक ।
 सोहत सुंदर सिव विस्तु^१ जैन,
 तिनकी उपमा^२ कहते वने न ॥१८४॥
 षटमत के नर-नारी प्रवीन,
 निज धर्म मांहि निति रहै^१ लीन ।
 तिन मांहि देहुरा ईक^२ विसाल,
 तँह राजत नेम प्रभू दयाल ॥१८५॥
 लसकरी नाम कहियत महान,
 मनु रच्यौ विरंचिजु करि सयांन ।
 मधि चौरी प्रभुकी मत प्रमांन,
 अति वनी फटिक सम लगि पषांन ॥१८६॥
 ता मांहि जटित है स्यांम संग,
 मनु लसत नील मनि^१ अति सुरंग ।
 चित्राम वन्यौ तामै अनूप,
 लखि^२ भविजन पावत निज सरूप ॥१८७॥
 पंडित तहां राजत है कत्यांन,
 बहु तरक न्याय वांचत पुरांन ।
 निज धर्म^१ कर्म मै सावधान,
 विन धर्म वात जिनकै न आंन ॥१८८॥
 गुनकीरति यक मुनिवर महान,
 तप करत अधिक जिनमत प्रमांन ।
 तिन^१ आग्या दी यह रचहु गृथ^२,
 जाँमै बहु विधि ह्वै^१ जैनि पथ ॥१८९॥
 मुनि सघ गच्छ ह्वै^१ आमनाय,
 जिनकी उत्तपति कहिए वनाय ।

१८४ : १ बिस्तु । २ उपमा ।

१८५ : १ रहै । २ इक ।

१८७ : १ मणि । २ लषि ।

१८८ : १ धर्म ।

१८९ : १ तिन । २ ग्रंथ ।

१९० : १ गण ।

तिन मांहि फटेां हैं गछ अनेक,
 गहि चलन नए सु कहौ प्रतेक^२ ॥१६०॥
 फुनि मुनिजन कौ जो चलन धर्म^१,
 तिनकौ हू विधिवत कहऊ^२ मर्म ।
 प्रभु महावीर तै^३ जे मुनींस,
 अवलौ भट्टारक है जतीस ॥१६१॥
 इन^१ जहां जहां पायो पदस्त,
 सोहू वरन^२ करिऐ समस्त ।
 श्रावग^३ के हैं जो खांप^४ गोत,
 तिनकौ वर्नन^५ करिऐ उद्योत^६ ॥१६२॥
 फुनि अहौरात्रि किरिया^१ करे सु,
 जिन धर्म जु जैनी जिम धरै सु ।
 विधि दया^२ दांन की कहौ सर्व,
 तिम श्रावग साधहि त्याग गर्व ॥१६३॥
 श्रावग मुख वात कहैं कित्तेक^१,
 जिनमत की बहु विधि करि विवेक ।
 सोहू धरिऐ या गृथ माहि,
 लखि ससय भविजन के^२ मिटाहि ॥१६४॥
 यह आग्या पाई वखतरांम,
 गोत है साह चाटसूं^३ ठांम ।
 पडित कल्यान तै विनति कीन,
 यन^१ कौ हू गृथ रचै नवीन ॥१६५॥

१६० . २ प्रत्येक ।

१६१ १ धर्म । २ कहहु । ३ तै ।

१६२ . १ इन । २ वरनन । ३ श्रावक । ४ पाप । ५ वरनन । ६ उद्योत ।

१६३ : १ किरिया । २ दया ।

१६४ १ कित्तेक । २ कौ ।

१६५ . १ इन ।

†Divided

‡About 27 miles S-E of Jaipur.

फुनि चांदूवाड़ सत्तोषरांस^१,
 भावसा रूड़मल बुद्धि धांस ।
 मिलि कही गृथ रचिऐ अनूप,
 जातें जानै जिनमत सरूप ॥१६६॥
 इम इनकी अधिक सहाय पाय,
 वरनत हों अरव कविता बनाय ।
 जो यामै चूक कछुक होय,
 लषि हसहु न दुरजन सजन लोय ॥१६७॥

दोहा : प्रथम गृथ हौ संसक्रत^१, नीतिसार^१ हितकार ।
 ईंद्रनंदि मुनि करि रचित, जिन वांनी अनुसार^२ ॥१६८॥
 जिनमत में तै और मत, नूतन चले कितेक ।
 तिन परि संसय मिटन कौं, रच्यौं गृथ यह ऐक ॥१६९॥
 तव ताकी कीन्हौ अरथ, पंडित महा कल्यांन ।
 वखतरांस भाषा करी, ताही तनै प्रमांन ॥२००॥

प्रथम भाषा गृथ की

चौपई : श्रीजिन नेम जगतत्रय नाथ, तिनकौं नमौं जोरि जुग हाथ ।
 जे जग मांही मुनि अनगार, परम तत्व के जाननहार ॥२०१॥
 तिनकी संपति महा मनोग्य, सुरपति करि सराहिवा जोग्य ।
 तिनकौं नीतिसार यह गृथ, कहि हौं^१ सकल चलन सुभ पंथ ॥२०२॥

१६६ . १ सतोषराम ।

१६८ : १ संस्कृत । २ अनुसारि ।

२०२ : १ है ।

†Publ'd as No. 13 of the 'Manekchandra Digambara Jain Granthmala', Hirabag, Bombay. It contains 110 stanzas, and in verse 70 the author Indranandin refers to Nemichandra. Other copies of the work have been found at Arrah, Bombay, Idar, Jaipur etc (H. D. Velankar's 'Jinaratna Kosa' Vol 1 p 216) Two copies of the work are preserved in the Digambar Jain Bada Mandir, Jaipur, (Catalogue Comp. by Dr K. C. Kasliwal, pt. II) The author has been styled as इन्द्रनन्दि योगीन्द्र । 'Nitisara' is not a voluminous work. Most probably the author refers to Indranandin, whom Acarya Nemichandra holds as श्रुतसागरपारगात्री in the Gommatasara.

वाही जंबूदीप मभारि, दक्षिण^१ दिसि लीजिये विचारि ।
 तामें भरथक्षेत्र^२ ता माहि, मद्धि देस अति सुव वसाहि^३ ॥२०३॥
 श्री म्हावीर जु सिवपुर गऐ, ता पीछे^१ जे मुनिवर भऐ ।
 यसोभद्र^२ लौ सकल छवीस, फुनि हुव भद्रवाहु मुनि ईस ॥२०४॥

दोहा : वन छवीस के नाम जो, देख्यौ चाहीं कोय ।
 वरनों जहां पटावली, तामें लषियो^१ लोय ॥२०५॥

चौपई : काल चतुरथ जु भयो विलीत, तव आयो पचम भयभीति^१ ।
 भऐ अवंती विक्रम भूप, भद्रवाहु मुनि हुते अनूप ॥२०६॥
 ते तौ स्वर्ग पहुँचे^१ जाय, फुनि जो भईस सुनि मन लाय ।
 वे प्रभु वर्धमान जिनराय, तिनकौ मत भविजन सुषदाय ॥२०७॥
 सघ बहुत प्रगटे ता मद्धि, यह विचित्र गति काल प्रसिद्धि ।
 निज इच्छा माफिक जग जवै, चलन लग्यौ आपस मै सबै ॥२०८॥
 पाप ताप करि मोहित होय, काहू की मानत नहि कोय ।
 तव जे मुनि हे महा प्रवीन, परमाथी सु^१ आतम लीन ॥२०९॥
 तिनकै मन^१ विचार अपनो^२, अपने और पराए तनों ।
 जो इनकी बंधै न मरजाद, तौ न मिटै तम तनो विषाद ॥२१०॥

दोहा : एक-मेक ता सवनि की, लषि कै डरे महंत ।
 तव उत्तम^१ पुर षानि कै, निमत^२ विचारी संत ॥२११॥

सोरठा : ' संघ गच्छ^१ गण सार, साषा ऐ च्यारौ सुविधि ।
 करिकै परम विचार, प्रथम सथापे मुनिनु के ॥२१२॥
 ग्राम नगर कै नाम, खांप^१ गोत श्रावगनि के ।
 ठहराए लषि ठाम, सो अवली यह^२ प्रगट है^३ ॥२१३॥

२०३ . १ दक्षिण । २ भरतपेत्र । ३ वसाहि ।

२०४ . १ पीछे । २ यसोभद्र ।

२०५ . १ लषियो

२०६ . १ भयभीत ।

२०७ : १ पहुँचे । ।

२०८ . १ स्व ।

२१० : १ मनि । २ रूपनी ।

२११ . १ उत्तिम । २ निमति ।

२१२ . १ गच्छ ।

२१३ . १ षांप । २ ए । ३ हैं ।

दोहा : तामै सब श्रावकन की, जिम उत्पति है चार ।
 सो तौ आगें वरनि हौं इनको सकल प्रकार ॥२१४॥
 प्रथम वरन मुनिगननु कौ, कीजत है सुभ जानि ।
 ग्रंथन^१ के अनुसार तै, सब जन कौ सुखदानि ॥२१५॥

प्रथम संघादि-उत्पति

चौपई . भद्रवाहु मुनिगन के ईस, तिनके पट में भयो मुनीस ।
 संवत छब्बीसा के साल, नाम तीन तिन लहे रसाल ॥२१६॥
 गुप्त-गुप्त आचारिज भये, दुतिय नाम अर्हद^१ बलि दये ।
 त्रितिय विसाखाचारिज नाम, ताकै सिद्धि च्यारि अभिराम ॥२१७॥
 इक तौ माघनंदि मुनिराय, व्रषा^१ जोग दिय तरु तलि जाय ।
 तिनको नंदिसंघ थापियो^२, गच्छ सरस्वती निमापियो ॥२१८॥

चौपई^१ : पारिजात-गच्छ^२ हू कहैं, गच्छ-नाम ऐ दो निरबहैं ।
 गण थाप्यौ है बलातकार, साषा तिनकी थरपी^३ च्यार ॥२१९॥
 नंदिकीर्ति^१ भूषण फुनि चंद, ऐतौ या विधि भये अमंद ।
 दूजे देवसिंह^२ मुनिराज, कहिये श्री जिन धर्म-जिहाज ॥२२०॥
 सिध-गुफा मधि वरषा जोग, तिन मुनि दीहौ महामनोग ।
 सिध-संघ तिनको निरमापि, चंद्र-कपाट-गच्छ दिय थापि ॥२२१॥
 गण काणू^१ रस थाप्यो मुनी, साषा च्यारि नाम भवि सुनी ।
 आश्रव कुंभ सु सागर सिध, ईनमें^२ लखिये ग्यान अभंग ॥२२२॥
 तीजो^१ सिषि^२ सेनि मुनि भयो, वृषा जोग कूं चाललि^३ दयो ।
 सेनसंघ^४ पुसकर गच्छ धरचो, गणसूरस्थ^५ नाम यह करचो ॥२२३॥
 साषा च्यारि सुणौं गुणधीर, सेन राजभद्र फुनि वीर ।
 चतुरथ सिधि^१ देवमुनि इंद^२, वरषा जोग धरचो गुणवृंद ॥२२४॥

२१५ . १ गृथनि ।

२१७ . १ A अरहद ।

२१८ . १ वृषा । २ थापियो ।

२१९ . १ A missing । २ गच्छ । ३ थापी ।

२२० . १ नवकीर्ति । २ देवस्यध ।

२२२ . १ काणू । २ इनमें ।

२२३ . १ तीजो । २ सिष्य । ३ चातलि । ४ सेन स्यंघ । ५ सूरस्थ ।

२२४ . १ सिध । २ इद ।

देवदत्ता वेस्या घरि जाय, तप कीन्हौं तिन मन वच काय ।
 देवसघ^१ थाप्यो तिन^२ तनों, सोभित देवप्रभा सम मनौं ॥२२५॥
 गछ पुसतकगण देसो ठानि, साधा च्यारि करीऐ जानि ।
 देवदत्त पुग फुनि नाग, तिनको है जग में सोभाग ॥२२६॥
 जिहि जिहि^१ थानक मुनि दिय जोग, तिह विसेष किय नाम सँजोग ।
 इम साषा गण गछ संघ सवै, थपे मुनी अर्हद^२ वलि तवै ॥२२७॥
 इन च्यारिनु कौ कियौ मिलाप, भेटन कौं जग की अघ ताप ।
 च्यारिनु में दीक्ष्यादिक^३ कर्म, तिनमें भेद नही को भर्म ॥२२८॥
 फुनि पडकमणा प्राछत^१ जान, ग्रंथ अचार सु और पुरांन ।
 तिन कै मधि विसेषि^२ को संत, भेद न जानहु^३ सकल महंत ॥२२९॥
 इनकी आमनाय में कोय, जो जिन विव प्रतिष्ठ्यो होय ।
 जे भविजन है या जग माहि, ताहि मानियो संसय नाहि ॥२३०॥
 औ संघ कीजो अमनाय, तामें विव प्रतिष्ठ्यो जाय ।
 ताहि मानिवो नहि कुल-रीति, वामै न्यास तणी विपरीति ॥२३१॥
 ऐही सघ जगत में सार, स्वै परमोक्ष दिषावनहार ।
 इनमें भेद कियौ जो चहै^१, नहि समकितो मिथ्याती वहै ॥२३२॥

अथ आचारिज आदि गृहस्थाचार^१-यति^२-वर्तन

चौपई : जे मुनि पालै पंचाचार, ह्वै वे ता मुषि मूलाचार ।
 सोही च्यारि सघ में मानि, आचारजि कहिए गुनखानि ॥२३३॥
 नय अनेक करि साख सकीर्ण, तिनके अरथ^१ माडि परवीण ।
 समरथ कर वामें व्याष्यान, पचाचार माहि रत जान ॥२३४॥
 सोही सही उपाध्या होय, अरव साधु-गुण सुणि भवि-लोय ।
 सकल परगृह^१ रहत^२ जु होय^३, करै नही व्याष्यान जु कोय ॥२३५॥

- २२५ १ देवस्यघ । २ तिह ।
 २२७ १ जिह जिह । २ ^Aअरहद
 २२८ १ विष्यादिक ।
 २२९ १ प्राछित । २ वसेष । ३ जानहु ।
 २३० १ वहै ।
 २३३ १ गृहस्थाचार्य । २ ति only ।
 २३४ १ अर्थ ।
 २३५ : १ परिगृह । २ रहित । ३ सोय ।

दिक्ष्या सिष्यादि करे^१ कर्म, तातैं ह्वैं विरक्त गहि धर्म ।
 मौनि^२ ध्यानजुत ह्वैं जो साध, ताहिं जानियौं निर-अपराध ॥२३६॥
 साख कला नाना परकार, तिनमै चतुर होय गुणधार ।
 गच्छ वधांवन बुधि तिह तनी, ऊंचे^१ मन कौ^२ ह्वैं जो मुनि ॥२३७॥
 फुनि वै^१ कातिवांन हू होय, ताहि भटारक कहिए लोभ ।
 तत्व अरथ^२ सूत्रन^३ व्योष्यान, क्रिया-कलापन^४ मांहि सुजान ॥२३८॥
 सो स्वामी कहियतु है चाहि, मुनि सत्तम हूं कहिए ताहि ।
 ऐतौ भेद मुनिनु के भगों, सुणहु ग्रहस्थाचारिज तरों ॥२३९॥
 जो गृहस्थ^१ सुध^२ ह्वैं कोय, जिनमत तणे साख जो होय ।
 तिनको^३ पढन-पढांवन-हार, करन-सुनन की ह्वैं बुधिचार^४ ॥२४०॥
 कथन सुनावत हू ह्वैं चाहि, ह्वैं अजीवका याही मांहि ।
 सवतैं पूजनीक ह्वैं रहै, ताहि गृहस्थाचारिज कहै ॥२४१॥

अथ मुनिजन कौं धर्मकार्य करवा कौ वा अधर्म-कार्य
 तजवा कौ वा जोग्य अजोग्य कारिज करवा न करवा कौ उपदेस वा
 श्रावक^१ कौं उपदेस वर्नन भाषा गुंथस्य ।

चौपई : नंदि सिंघ देव फुनि सेन, ऐ उतकिष्ट संघ मत जैन ।

तिनकौं जोग्य अजोग्य विचार, भाष्यौ नीतिसार मै सार ॥२४२॥

इन च्यारिनु के है मुनिराय, होय विसंधी तिनही सिवाय ।

तिनकी पंकति-भोजन जानि, करिवो जोग्य^१ नही सुषदांनि ॥२४३॥

वहुरि विसंधी लषि कै मुनी, न करि नमोसत यह गुर भनी ।

च्यारयो^१ मिलि नमि असन करांह, तामैं दूषन भाष्यो^२ नाहि ॥२४४॥

फुनि मुनि सावधान ह्वैं घरों, श्रावक-संघ विसंधी तरों ।

तिनकौं करै न अंगीकार, कीऐं लागत दोष अपार ॥२४५॥

२३६ १ कए । २ मौनि ।

२३७ १ ऊंचे । २ फो ।

२३८ . १ वह । २ अर्थ । ३ सूत्रनि । ४ कलापनि ।

२४० . १ गृहस्त । २ सुध । ३ तिनकौ । ४ बुधि चार ।

२४२ : १ श्रावक ।

२४३ . १ ज्योगि ।

२४४ : १ चारघों । २ भाष्यो ।

विसंघीन^१ को^२ सेवक^३ होय, वह श्रावक जो अपरणी^४ कोय ।
ताको गृहण करै नहि दोष, निज मत को करिवा को पोष ॥२४६॥

अग्लि : मिथ्यादृष्टि तरणी परीष्या कीजिए,
तवही वाको निजमत दीक्ष्या दीजिए ।
बिना परीक्ष्या दरसण-मत की हांस्य ह्वै,
बहुरि आप अरु धर्म तरणी भी नास ह्वै ॥२४७॥

छंद लषि वाई श्रावकणी अजिका जिह थानक में वसती होय ।
गीता : बहुरि^१ मंडी^२ चित्राम-तरणी ह्वै फुनि ह्वै और जाति की कोय^३ ॥
इनकं ढिगि ह्वै फान उदीपन मन अति चंचल ह्वै गुन षोय ।
तिह थानक मुनिराज सर्वथा^४ निसि में सुष सोवहु मति कोय ॥२४८॥

दोहा चित्र तरणी हू फूलती, लषि उपजत अनुराग ।
तो प्रतक्ष तिय संगि^१ रहें, क्यों न लगं मुनि-दाग ॥२४९॥
राह माहि भी अजिका, साथिन मुनि चालंत ।
आगे भी इन सग तै, दूष अति पाए संत ॥२५०॥
होय अकेली जो तिया, ताकै संगि मुनीस ।
भोजन करै न बैठही, गोष्टि करै न भलीस ॥२५१॥
जिह जिह^१ थानक कं विषै, इद्री धरै^२ विकार ।
ताहि छाडि मुनिवर करै, चारित रक्षा-सार ॥२५२॥

छंद सामायक सतवन वंदन फुनि पड़कमरणी^१ अर^२ प्रत्याक्ष्यान^३ ।
गीता : बहुरि करै कायोतसगं सव ऐ षट कहे श्रावसिक जानं ॥
ऐ किरिया तजि और^४ क्रिया कछु करहि न बहुरि गीत वाजित्र ।
रसमय चित अनुरागि सुनें नहि तजै रहै मुनि सदा पवित्र ॥२५३॥
जिह जिह साख और विद्या करि समकित^१ सजमादि गुण हांनि ।
होत मुनिनु कं सो सव सेवन छाड़हि जे मुनिवर गुनषानि ॥

२४६ : १ विसंघीनि । २ को । ३ सेवक । ४ अपरणी ।

२४८ : १ बहुरि । २ मंडी । ३ जोय । ४ सर्वथा ।

२४९ : १ संग ।

२५२ : १ जिह जिह । २ धरै ।

२५३ : १ पडकमरण । २ अर । ३ प्रत्याक्ष्यान । ४ और ।

२५४ : १ समकित ।

अजिका सिष्य गृहस्थ आदि नर थोड़ी बुधि वाले जो^२ होय ।
 तिन आगे सिधांत आचार सु गृथन वाचहि जे मुनिलोय ॥२५४॥
 होय^१ विसंधी जती सु तिनकों गृथ सिधांत अवर आचार ।
 कवहू नाहि सुगाय पढावहु सुणिवौ हू वनकौ नहि चार ॥
 वहुरि वंदना पीछै^२ पहली कवहूं करिवो नांहि न^३ जोग्य ।
 अैसे कही सासत्रिन^४ मै गुरु धारहि ते मुनि महामनोग्य ॥२५५॥

छंद अरिल^१ : दीषित^२ होय नवीन मुनीस्वर जासकों,
 वडी अजिका होय सु वेदै^३ तासकों ।
 भक्तिभाव करिकै सब संका यरहरै^४,
 अजिका तै मुनि प्रथम वंदना नाहि करै ॥२५६॥
 अजिका आप नमोस्त मुनी कौं जव करै,
 कर्मक्षयोस्तु समाधिरस्तु मुनि ऊचरै ।
 श्रावग करै नमोस्त जपे मुनिनाथ सौं,
 धर्म-विधी^१ देवै तव मुनि निज हाथ सौं ॥२५७॥
 मिथ्याद्रष्टी^१ भी कोई वंदन कहै^२,
 परि वह भले वरण कौं ह्वै निज कौं चहै^३ ।
 ताहि मुनीस्वर धर्मविधि^४ कहि अघ हरै,
 सूद्रनि कौं कहि धर्मलाभ राजी करै^५ ॥२५८॥
 समकित दरसण^१ करि चांडाल जु सुद्ध ह्वै,
 करै वंदना मुनि कौं^२ मुनी सुवृद्ध ह्वै ।
 पापक्षयोस्तु कहै ताकों सुभ वै नहीं,
 वाकों और कहन की विधि कछु हैं नही ॥२५९॥

कवित्त . गायक तमोली तेली माली छोपी कोटवाल,
 वहुरि कलाल मद वेचै है वनाय कें ।

२५४ . २ जे ।

२५५ . १ होत । २ पाछें । ३ तु । ४ सासत्रिनि ।

२५६ : १ A अरिल only । २ दीषित । ३ वदं । ४ परि हरै ।

२५७ : १ वृद्धि ।

२५८ . १ द्विष्टि । २ कहैं । ३ चहैं । ४ वृद्धि । ५ करै ।

२५९ : १ A दरण । २ कौं ।

वेस्या और दाईं फुनि मांगि षाने वाले,
 जन मद वेचै पीवै तिन संगि रहे चाय कै ॥
 केते नीच कर्म करि आजीवका पूरी करे,
 इन आदि सूद्रह नै जीवनि उपाय कै ।
 तिन कै मुनीस सावधान ह्वै जो,
 धर्म माभि करै न अहार घरि सर्वथा हीं जाय कै ॥२६०॥

छंद : महा मिथ्याती के घर मै मुनि भोजन नाहि करै इम जानि ।
 गीता : वनकै^१ वस्त सदोस वायरै तिह^२ कारण^३ त्यागै दुषदांनि ॥
 यातै भलो रसोई करि निज जो जीमण ठानै तौ ठानि ।
 भाषी अधिक दोष लषि कै भवि निश्च^४ नयन कही यह वानि ॥२६१॥
 ह्वै मध्यांन समै तवही लषि दीन अनाथ दुषी को जीव ।
 तिनकाँ भोजनादि वस्तनि^५ काँ हित करि कै द्रावत^६ सदीव ॥
 इह^७ विध^४ करत^५ सावधानी जे दयाभाव उर^६ धारि मुनिद ।
 पूजनीक ते^७ मुनिनु माभि ह्वै करहि प्रससा तिनकी इँद ॥२६२॥
 मुनिवर होय तावडै ठाढे फुनि छाया कै मधि आवत ।
 छाया तै चलि जात तावडै^१ काहू कारण^२ जे गुण संत ॥
 काली घरती तै गोरी मधि गोरी तै काली मै जात ।
 दया जानि जीवनि की लै करि पीछी सोधत है निज गात ॥२६३॥
 रुके होय घर जा गृहस्थ^३ के वधे होय सु^४ आंगन मांहि ।
 विण^५ त्रिण वहरि अन्न सूकत इन आदि जु कर्म सदोष^६ लषाहि ॥
 भोजन करै नही मुनि ता घरि दोस न ह्वै ता कै घरि जाय^७ ।
 ठाढे सात स्वास लौं रहि फुनि दाता न ह्वै और^८ घरि जाय ॥२६४॥

चौपई^१ मुनिवर भलो^२ बुरो^३ भी कोय, अपणौ और परायो^४ होय ।
 भूष मरत लषि कै अंन-दान, देहु गृहस्थ विलवन ठानि ॥२६५॥

२६१ . १ जनकै । २ तिह । ३ कारण ।

२६२ : १ वस्तनि । २ द्रावत । ३ इह । ४ विधि । ५ करै । ६ काँ । ७ जे ।

२६३ . १ तावडै । २ कारण ।

२६४ . १ ग्रहस्थ । २ पसु । ३ विन । ४ दोस । ५ आय । ६ और ।

२६५ : १ चौपई । २ भलो । ३ बुरो । ४ परायो ।

छपै : सम्यकद्रष्टी^१ होत^२ ग्यान चारित्र धरै विनि ।
 सो अतिसय करि पात्र होय आचरण^३ करै मुनि ॥
 मिथ्याद्रष्टि होय ग्यान चारित कौ धारी ।
 सो नहि पात्र कहात कुमारग^४ को अधिकारी ॥
 जे होत सुपात्र सुमारगी तिनहै दांन देवो जुगति ।
 मति पाषंडी कौ देहु भवि दिऐ वढे मिथ्या कुगति ॥२६६॥

सोरठा : जीरण ह्वै जो कोय, प्रतिमा पोथी देहुरा ।
 फिरि थापै अति होय, पुंन्य न ऐहू करण तै ॥२६७॥

सवैया : सूतौ तथा चित्त द्वै उदविघ्न^१, करै मल मूत्र किधौ जवही को ।
 कर्म क्रत्तौ होय निदिहू ताहि, करे नहीं वंदना साध-रती को ॥
 ह्वै सावधान जवै सच ही विधि, धर्म औ ध्यान मै लीन जती को ।
 ताही मुनिस कौ वंदना जोग्य, कही करवो सु भलौ^२ सवही कौ ॥२६८॥

दोहा : करि नमोस्त निरगुंथ कौ, अजिका कौ वंदांम ।
 उत्तम^१ श्रावग कौ करै, निज मुष तै इच्छांम ॥२६९॥
 भोजन नमण सु आदि की, जे हैं रीति सुजांण ।
 पूर्वाचारिज मांनि ह्वै, सोही करहु प्रमांण ॥२७०॥

सोरठा : पूर्वाचार्य उलंघि करै, रीति वोछी अधिक ।
 वह मिथ्याती संघि, वड़े पुरिष वंदै तहीं ॥२७१॥

छंद पद्धरी : मुनि ऐकाकी जु करै विहार,
 पावै नहि धर्म कहूं लगार ।
 दूजे मुनिकै रहिजे जु^१ संग,
 तव हीयै है सुभ धर्म अंग ॥२७२॥
 मुनि पांच च्यारि फुनि कहैं^१ तीन,
 तिनहीं कै साथि मुनि नवीन ।

२६६ : १ दिष्टि । २ होय । ३ आचरण । ४ कुमारिग ।

२६८ : १ उदविघ्न । २ भलौ ।

२६९ : १ उत्तम ।

२७२ : १ सु ।

२७३ . १ कहे ।

करिए विहार इक रहहि^२ नांहि,
 गिणती की ह्व^३ वह गल्छ मांहि ॥२७३॥
 मद मास मधु विनि मंत्र साधि,
 बहु करत सिद्धि देवनि अराधि ।
 जे मद आदिनु तै होत सिद्धि,
 ताकौ असिद्ध कहिए नषिद्धि^१ ॥२७४॥
 मुनि धारि रहै तन बख सील,
 निरगुंथ परै राषै सुडील ।
 त्यागण ह्व^३ जो निज देह प्राण,
 नहि जोग्य बख गृहणौ^१ प्रमाण ॥२७५॥

चौपई : पंच प्रकार बख करि हीन^१, जे सजम घर मुनि-तन षीन ।
 भींठत राषत दर्व्य न हीन, मानत तिन्है पुरिष परचीन ॥२७६॥
 कवहू नेत नहीं मुष सोधि, ठाढे जीमत दयापयोधि ।
 भेट संघ सौं ले नही रती, ते जग माही साचे जती ॥२७७॥
 दीक्ष्या^१ दाता फुनि जु पढावै, आचारादिक गुंथ वंचावै ।
 दोषरहित गुणसहित जु होई, ताहि गुरु कहिए भवि-लोई ॥२७८॥
 मूल संघ गण गल्छ सुपात्र, जुक्त होय मुनि जैनी मात्र ।
 सवही गुरु करि मानौं जेह, इनमें और न करि सदेह ॥२७९॥
 पुस्तकसंघ बुद्धि, कं काज, अल्प अजाच्यौ घन रिषराज ।
 कालदोष करि जे राषंत, तिनकौ दोष नहीं हे संत ॥२८०॥

दोहा : अब फुनि वरसा सैकड़ा, पाछै जाहु सरीर ।
 तजै न मारिग सर्वथा, जे विवेकधर धीर ॥२८१॥

छंद पधरि : जिह मुनि कौ चित ह्व^३ सदा सुद्ध^१,
 लगि रह्यौ आतमां में सुबुद्ध ।

-
- २७३ २ रहहु ।
 २७४ : १ निषिद्धि ।
 २७५ १ गृहणौ ।
 २७६ १ हीण ।
 २७८ १ दीक्षा ।
 २८२ १ सुष ।

ताकौ नृप वा श्रावक जु होय,
 बर्यौ ही करवा समरथ न कोय ॥२८२॥
 लषि वस्तिकांनि^१ भै मुवो जीव,
 पंचेद्री फुनि लोही अतीव ।
 मुनिवर कौं रे भवि तास मांहि,
 पडिकमराँ करिवो जोग्य नांहि ॥२८३॥

चौपई . मुनि दिगंबर जे गुणग्राही, वांचत है सिद्धांत सदा ही ।
 ते एते दूषन्^१ कौं टारै, तव ही इनके वैन उचारै ॥२८४॥
 वांचत विख्यान वैठत पाटै, भूमि क्षेत्र ले सोधिनि राटै ।
 ह्वै निरजीव तहां ही वांचै, बहुरि विनय तै अति ही राचै ॥२८५॥
 ते उतकिष्ट^१ मरण कौं करिहैं, सुभ गति मांभि पाव वे धरिहैं ।
 करत वंदना जब प्रभु काजै, अंचे आगुल^२ चवली^३ राजै ॥२८६॥
 बहुरि समै संध्यारज वरषै, गृहण सु उलकापातहि परषै ।
 चमकत बीज मेघ बहु गरजै, तवहूँ वाचत नहि मुनिवर जे ॥२८७॥
 विनहीं काल सुद्ध हू भाषै, तेहू फल आछे नहि चाषै ।
 अध्यातम सिधांत आचार^१, गृंथ प्रायश्चित्त किरियासार ॥२८८॥
 विनि विधि वाचन तजौ प्रसंगा^१, फुनि ह्वै कोय विसंधी संघा^२ ।
 तिन हूँ कै संगि वाचत नाही, यह गुर नीकै सीष बताही ॥२८९॥
 करत प्रायश्चित्त जे मुनि चोषा, साख मांभि देखि वह दोषा ।
 'माफिक गृंथ प्रायश्चित्त देगां'^१, घटि बढि देय^२ दोष क्यौ लेगां ॥२९०॥
 गणधरांनि की तौ गुर-भक्ति, करि अति नमसकार कै जुक्ति ।
 मुनि नवीन दीक्षत ह्वै ताहि, वंदन प्रति वंदनां कराहि ॥२९१॥

मुनि सास्त्र-करता नाम-वर्नन

अरिल^१ : भद्रवाहु श्रीचंद बहुरि जिनचंद है,

तिनकी मुनिवर-गन में बुधि अमंद है ।

२८३ . १ वस्तिकांनि ।

२८४ : १ दूषण ।

२८६ . १ उतकृष्ट । २ आगुल । ३ चवली ।

२८८ : १ आचार ।

२८९ : १ प्रसंग । २ संग ।

२९० . १ 'माफिक दोष प्रायश्चित्त देगां' । २ देह ।

२९२ . १ छंद अरिल ।

गृधपच्छि^२ फुनि लोहाचारिज नाम हैं,
 ऐलाचारिज पूजिपाद अभिराम है ॥२६२॥
 वडे कवीस्वर^१ वीरसेनि^२ जिनसेनि^३ है,
 इक दस ऐं गुणनदि भले त्तिनु वैन हैं ।
 सुमतिभद्र श्रीकुभ अवर सिवकोटि ऐ,
 कहे सिवायन विस्वसेन जग वोटिऐ ॥२६३॥
 गुणभद्राचारिज गुण अधिक विराज हीं,
 है अकलंक र सोमदेव छवि छाजही ।
 प्रभाचंद्र अरु^१ नेमचद^२ मुनिराज है,
 ऐ ईकईस^३ भऐ गुर धर्म-जिहाज है ॥२६४॥
 इत्यादिक जे मूलसंघ-धारक मुनी,
 जिनके रचे सासत्रिनि नांचत है दुनी ।
 तिनके वचननि वाचि मानिवो जोग्य है,
 जे मानिहि ते जगमें महामनोग्य है ॥२६५॥

दोहा रचे जु संघाभास मुनि, गृथ भले भी कोय ।
 तिनहि वाचिवो मानिवो, जोग्य नही भवि लोय ॥२६६॥
 कारण याकौ यह लषौ, वै कहि मीठी वात ।
 फुनि लुभाय वह काय कं, निज मत में ले जात ॥२६७॥

अरिल^१ : पूर्वाचारिज वचन कहै सो मानिऐ,
 वीतराग के वचनतुल्य वे^२ जानिऐं ।
 जानन वाले भविया पंचम काल में,
 वदनीक ह्व^३ है गुर परम दयाल मै ॥२६८॥
 पहिले दर्व्य लग कौ धारत है गुनी,
 पीछं ह्व^३ है भाव-लिंगधारी मुनी ।
 विन दर्वी वह व्रत हू करतौ होय जो,
 वंदनीक नहि होय जगत में सोय जो ॥२६९॥

२६२ २ गृधपच्छि ।
 २६३ १ कवीसुर । २ वीरसेन । ३ जिनसेन ।
 २६४ १ अरु । २ नेमिचद । ३ इकईस ।
 २६५ १ सासत्रिनि ।
 २६८ १ अरिल छद । २ वै ।
 २६९ १ लिंग ।

कवित्त : दर्व्य-लिंग कौ स्वरूप^१ यह जानिएँ अनूप,
 विना वस्त्र होय ते दिगंबर^२ कहात है ।
 सिर डाढी मूछनि के केसनि की लौच करै,
 कांषादिक वाल वधे नजरि जे आत है ॥
 आभरण नांहि कमडल पीछी हाथ मांहि,
 धरै यह रूप सब गृथनि मै गात है ।
 दर्व्य है सुभाव ही कौ कारण प्रतक्ष^३ दीसै,
 भाव है सु अध्यातम गोचर बतात है ॥३००॥

सोरठा : मुद्रा जग मै मानि, विनि मुद्रा नहि मानि^१ ह्वै ।
 नृप मुद्रा करि जानि, लघु नरकों मानै वड़ो^२ ॥३०१॥

छंद : यह भेद कहूं प्रतिमां के, लषि काछ आदि कछु ताकै ।
 वह स्वेतांवरी जु होई, काष्ठासघी ह्वै कोई ॥३०२॥
 ताकौ वंदन नहि कीजे, परतिष्ठा सुद्ध नही जे ।
 यातै वंदन वरजी जे, मुनि की विधि ऐ सुनि लीजे ॥३०३॥
 ह्वै रूप कुलगी वाकौ, वदन न करौ भवि ताकौ ।
 उपदेस तवै विपरीता, तातै वरज्यौ यह मीता ॥३०४॥

दोहा : जिह जिह कारिज तै धर्म^१, वधै सु करै सही सु ।
 माननीक ह्वै ते जती, निंदन जोग्य नही स^२ ॥३०५॥

छंद चाल मुनि पै मुनि कोई आवै, आदर करि तिह वैठावै ।
 प्राधुनिकी विधि कर वाहीं, वढि चाले वरजै नांही ॥३०६॥
 पाटा पोथी पीछी वै, विन मांगे नांही छीवै ।
 जब लौं वह संगि रहावै, भिध्या कौं भ्रमण करावै ॥३०७॥
 यह धर्म निरतर भाष्यौ, मुनि राजनि सो अभिलाष्यौ ।
 फुनि निज गुर के आंवन की, विधि कहूं तोहि^१ पांवन की ॥३०८॥

३०० : १ स्वरूप । २ दिगंबर । ३ प्रतक्षा ।

३०१ : १ मान्य । २ वडे ।

३०५ : १ धर्म । २ सु ।

३०६ . १ छंद ।

३०८ : १ होन ।

गुर आत दूरि तै देखै^१, वढि^२ निकटि जाय पद पेखै ।
 अनकूल^३ होय मुनि आगे, करि नमसकार अनुरागे ॥३०६॥
 सेवा तिन की बहु करई, करि सुद्धभाव^१ अघ हरई ।
 नहि को या धर्म-समानों, यह सकल-सिरोमनि जानों ॥३१०॥

दोहा : दया करै गुर सिष्य पै, पुस्तकादि जो देय ।
 भावसहित दुहँ हाथि^१ लै, सिषि वदना करेय ॥३११॥

चौपई : जौ लों मरण करै जग माहि, वचन दीनता भाषै नाहि ।
 आजीवका निमत्ति जे मुनी, धर्म-ध्यान छाड़ै नहि^१ गुनी ॥३१२॥

दोहा : पुध्या करि ह्वै दूवले, मैलौ होय सरीर ।
 ऐ भूषण हैं मुनिनु के, लाज मरै नहि धीर ॥३१३॥
 मन करिकै मुनि सुद्ध ह्वै सोही सुद्ध कहाय ।
 मन विनि तन सुध होत नहि, कोटि सनान कराय ॥३१४॥

छुपे : कार्य अकार्य विचार जाणते ह्वै सब भाषा ।
 सर्व सास्त्र कौ अर्थकरण^१ की है अभिलाषा ॥
 धर्म तराँ उपदेस दैनवारे^२ मुनिराई ।
 ह्वै गुणवान जु कोय ताहि मानों सब भाई ॥
 फुनि होय सुद्ध मुनि निगुण हूँ, मुद्रा लषि कै मानिऐँ ।
 श्रावग सु श्रावग्या साध^३ की मन वच तन नहि ठानिऐँ ॥३१५॥

सोरठा : धर्म तराँ व्यौहार, उपदेसी कै आसिरं ।
 है यातं यह सार, जोग्य वात तुमकों कही ॥३१६॥

छंद गीता भक्त विसंधी कौ श्रावक जो भक्ति जुक्ति करि भोजन देय ।
 भोजन^१ भाड^२ सुद्धता करि कै तहा मुनीस अहार करेय ॥

३०६ १ देखै । २ उठि । ३ अनकूल ।

३१० . १ भाव सुद्ध ।

३११ : १ हाथ ।

३१२ : १ नहीं ।

३१५ : १ अर्थकरण । २ वाले । ३ साधु की ।

३१७ : १ भाजन । २ भड ।

भंड कहे मांटी के वासण भाजन कांसी पीतल मांनि ।
 तहां अहार ले न नहि वर ज्यौं दे सो ही वह उत्तिम^३ दांनि ॥३१७॥
 श्रावक जो कदाचि असो ह्वै भाजन भंड तास घरि सुद्ध ।
 ह्वै पाषंडी निदनीक अति मुनिजन तै ते^१ धरहि विरुद्ध ॥
 ता घरि भोजन करै नही मुनि जे धरमातम हैं गुण-षानि ।
 महापाप तै भरचौ अंन लषि करि निदांन वह छोड़त जानि ॥३१८॥

सोरठा : नहि भीटत सुमरंत, चित्र काठहू की तिया ।
 तौ साची तिय संत, छुप क्यौ लहै न आपदा ॥३१९॥

चौपई : चित्रहू^१ की तिय भींटी होय, तिह दिन भोजन करै न कोय ।
 जीमि चुषयो ह्वै जो मुनि सत, तौ वेलौ करि दोष हरंत ॥३२०॥
 सपरस जिह्वा दीन्हों दंड, तिह करि जग ठानै पाषंड ।
 तातै ब्रह्मचर्य कौ धरै, जती मनुष्य^१ ह^२ गुण आचरै ॥३२१॥
 मुनि श्रावक जो सघ मभारि, करै विघन तिह देहु निकारि ।
 सर्प डसं जो निज आंगुली, डूरि किएँ सु वचै विधि भली ॥३२२॥
 सम्पक दसर्ण^१ करिहू सुद्ध, थोड़ो ही तप करत सुमुद्ध ।
 ताही तपतं कटिहै कर्म, तातं पालहु समकित धर्म ॥३२३॥
 समकित ग्यान चरित को मूल, या विनि मुक्ति न ह्वै अनकूल ।
 मोषि तराँ निज साधन ऐहु, और नही है भवि लष^१ लेहु ॥३२४॥
 प्रतिकमराँ^१ फुनि लौच करंत, चौदसि आठै आय पड़ंत ।
 तौ तिथि है सराहिवा जोग्य, इनमै कारिज होय मनोग्य ॥३२५॥
 जिह जिह^१ वातां मै गुण घराँ, ह्वै ताकाँ बलवानं सु गिराँ ।
 या तै सबही तिथि मै जानि, चौदसि आठै है अति मांनि ॥३२६॥

३१७ : ३ उत्तम ।

३१८ : १ जे ।

३२० : १ चित्रहू ।

३२१ १ मुष्य । २ यह ।

३२३ . १ दर्शन ।

३२४ : १ लषि ।

३२५ : १ प्रतिकमराँ ।

३२६ १ जिहि ।

जिन जनमादिक तिथि फुनि क्रिया, बहुरि महींना सो मुखि लिया ।
 जोग करण अर वार नषित्र, ऐ प्रधान मति गिरणहु विचित्र ॥३२७॥
 चवदा द्वै घटिका निसि रहई, तव पूर्वा^१ वदना चहई ।
 दोय घड़ी मध्यान् कराही, प्रभु-वंदन करि मन हरषांही ॥३२८॥
 च्यारि घडी कौ है अपरा^१, करि वदना यहै परमां ।
 नम^२ आवे नजरि नषित्र, तव समायक तजहु विचित्र ॥३२९॥
 धर्म-काजि तिथि अधिकी^१ होय, सो ही काम तगी गिरिण लेहु ।
 आदि अंत मध्य कौ भेद, करि सकति ते तजो विनि घेद ॥३३०॥
 जिहि तिथि विषै जु किरिया कीजे, वह किरिया ही मांनि कहीजे ।
 क्रिया करण कौ ह्वै नहि काल, ग्रामादिक^१ कौ ह्वै जो चाल ॥३३१॥
 ती घटिका द्वै पहली क्रिया, करि लीजे दूषन नहि भिया ।
 जो प्रमाद करि भूलि गएहु, ती घटि द्वै पाछे करि लेहु ॥३३२॥

दोहा . दिन^१ घटिका छह चडि चुकै, तव स्वाध्याय सु आदि ।
 किरिया सारो कीजियो, पहले करहु न वादि ॥३३३॥

चौपई : भाषत ईंद्रनदि मुनिराय, पूर्वाचार्यनु कौ मत पाय ।
 थोडी सो मारग यह कह्यौ, जो विस्तार लष्यौ तुम चहौ ॥३३४॥
 ती वनके^१ जो कीन्हे गृथ, तिन मै देखि लेहु सुभ पथ ।
 तीर्थकर-मत कौ अभिप्राय, सर्व कौन करि जान्यौ^२ जाय ॥३३५॥
 ता तै वन की^१ आग्या संत, मानै ते सुष लहै अनत ।
 या भव पर-भव-फल सुभ पाय, कर्म-कर्म सिव पहुचै जाय ॥३३६॥
 अैसे सौभा करि वह मुनी, ईंद्रनदि आचारिज गुनी ।
 जग माहि जयवंतौ रहै, फुनि कंसौ है सौ कवि कहै ॥३३७॥

कवित्त : परमत-वादी गजघटा दूरि करिवे कौ,
 वांती जाकी जगत में सिंघ कं समांन है ।

-
- ३२८ . १ पूर्वाह्न ।
 ३२९ . १ अपराह्न । २ नम ।
 ३३० . १ अघकी ।
 ३३१ . १ प्रामातर ।
 ३३३ . १ दिन ।
 ३३५ . १ उनके । २ A जोन्यौ ।
 ३३६ . १ उनकी ।

फुनि बहु जानत पदारथनि के सरूप,
 देवनि कै मानि धारै निमत सुग्यान है ॥
 कुंदकुंदाचारिज गुरु के पद-सेवन तै,
 आगम आचार गृथ मांभि सावधान हैं ।
 वै ही इद्रनंदि रच्यौ संसकृत नीतिसार,
 भाषा वषतेस करी ताही कै प्रमान है ॥३३८॥

अथ विसंघ उत्पत्ति-वर्नन

दोहा : यां ही मत्त^१ मै नीसरे, संघ जिते जो और ।
 तिनहूं की उत्पत्ति वहरि, सुनहु ठिकानों ठौर ॥३३९॥
 आभा यन मै पाइयतु^१, कछुक यक^२ जैन प्रकास ।
 ता तै इनकों मुनिनु मिलि, भाषे जैनांभास ॥३४०॥

अथ संघ-नांम-वर्नन

दोहा : इक स्वेतांवर सघ फुनि, दूजौ द्रावड़ जानि ।
 ज्यायनीय अरु कासटा, निपछ पंचमों मानि ॥३४१॥
 तिन मै तै जे नीकसे, मत कितेक हठ ठानि ।
 तिनहूं की आगे कछू, कहिहों कथा वषानि ॥३४२॥
 निकसे स्वेतांवर पथम, जे जे ठानी रीति ।
 कहों गृथ अनुसार तै, सुनिऐ भवि करि प्रीति ॥३४३॥

अथ भद्रवाहु चरित्रे न उक्तं

दोहा : भद्रवाहु के चरित मै, जे भाषी मुनिराय ।
 सौ सब वाही गृथ की, भाषा धरी वनाय ॥३४४॥
 गोवरधन मुनि कै भये, भद्रवाहु सिषि सार ।
 पाठी ग्यारह अंग के, चवदस^१ पूरव धार ॥३४५॥
 तिनकै सगि सदा रहें, मुनि चौबीस हजार ।
 नगर अवंती कै निकटि, मालव देस मझार ॥३४६॥

३३९ . १ मत ।

३४० : १ पायइतु । २ यक ।

३४५ . १ चउदस ।

या नगरी उजेलि कौ, चद्रगुप्ति^१ नृप नाम ।
 धर्म-ध्यान में निपुन निज, बहुरि देस पुर ग्राम ॥३४७॥
 एकै निसि सोलह स्वपन^१, लषे जवें महाराजि ।
 आय सवें मुनि कौं कहे, फल पूजन^२ कैं काजि ॥३४८॥
 भद्रवाहु भाषी नृपति, फल सुनिए चित लाय ।
 आवत ईह अरव^१ काल में, अंसैं ह्वै है राय ॥३४९॥

सोलह स्वपन^१-वर्नन^२

छंद गीता : स्वर-वृक्ष की साषा षिरत देषी स्वपन में भूप,
 फल यह सुनीं आगे नृपति दीक्ष्या धरें न अनूप ।
 सूरिज लष्यौ जव अस्त होत सु काल पचम माहि,
 मुनिराज ग्यारह अंग चौदह पूर्व धर ह्वै नाहि ॥३५०॥
 दोहा : चन्द्र जु देष्यो छिद्रजुत, ताकौ फल यह जानि ।
 जिन-मत मांभि अनेक मत, फटि हैं लीजे मानि ॥३५१॥

छंद गीता : तुम सर्प^१ वारह फण तराँ, देष्यो अहो भूपाल ।
 फल लषहु वारह वरष कौ, पड़ि है बहुर भषि-काल ॥
 उलटौ विमान जु लष्यौ, जात सु रहै पंचम काल ।
 ता मे विद्याधर स्वर^२मुनी, चारण न आवहि हाल ॥३५२॥
 ऊग्यौ लष्यौ रौड़ीकमल सो, वैस्य जिनकौ धर्म ।
 पालि है फुनि छत्री^१ सु, ब्राह्मण तजें जिन आसर्म ॥
 नांचते देखे भूत सो नर से यहेँ स्वर^२ नीच ।
 आग्या तराँ देष्यो उद्योत सु जिन धरम कैं वीच ॥३५३॥
 उपदेस जिन-भाषित करन वारे कहुं कहु होय ।
 मिथ्यत जै है फलि सो यामें न ससय कोय ॥
 देष्यो सरोवर वीच में सूको सु पाणी अत ।
 फल सुनहु जन्म कल्याण आदि सुषेत्र जानि सहत ॥३५४॥

३४७	१ चद्रगुपति ।
३४८	१ सुपन । २ ब्रह्मन ।
३४९	१ अरव इह ।
३५०	१ स्वप्न । २ फल वर्नन ।
३५२	१ सर्प । २ सुर
३५३	१ षित्री । २ सुर ।

सो ही जु तीरथ जांनि फुनि जैनी न ह्वं तँह कोय ।
जिन-धर्म दक्षिण दिसि रहैगौ जाय हे भवि लोय ॥
कूकर कनक के थाल मै षाती लष्यौ तं षोर ।
फल जांनि छोटी जाति लषिमी^१ वांन ह्वं हैं वीर ॥३५५॥
गज परि^१ लष्यो मरकट चढ्यो फल यहै कुल जे हीन ।
ह्वं भूप तिनके दास उत्तिम कुल तरणें ह्वं दीन ॥
मरजाद तजत लष्यो उदधि सो अरु जु ह्वं भूपाल ।
अन्याय करि लछिमी सवनि की हौं हि घूटनवाल^२ ॥३५६॥
वहु वोभ कौ रथ वाछडे षंचते देषे सुद्ध ।
फन तरुण वरुणादिक^१ करै नहि करै जे ह्वं वृद्ध ॥
सुत लष्यो नृप कौ चढ्यो ऊट^२ सु फल जिके नृप लोय ।
निज धर्म तजि हिंसादि-कर्म सु करहिं लज्जा षोय ॥३५७॥
देषी ढकी^१ नृप घूलि तं रतनां तणी जो रासि ।
फल मुनी आपस मांहि करि हैं ईरषा परकासि ॥
फुनि जुद्ध-काले गजनि कौ देख्यो सु फल ये मेघ ।
नहि वृष्टि मनवंछित करै रहिवो करै उद्वेग^२ ॥३५८॥

दोहा .

फल यम सोलह सुपिन कौ, सुनि नृप भये उदास ।
चित्त वैराग विचारि कं, दीक्ष्या^१ ले मुनि पासि ॥३५९॥
रहन लगे सब संग ही, करत^१ तपस्या घोर ।
फुनि जु भई सो हू सबै, सुनहु कथांनक और ॥३६०॥
ऐकं दिवसि अहार कौं, श्रावग कं घरि जाय ।
तहां ऐक अचिरज^१ लष्यो, भद्रबाहु मुनिराय ॥३६१॥
लरिका देख्यो पालने, बोलन की विनि सक्ति ।
जाह जाह अंस कही, ह्वं मुनि अचिरज-जुक्ति^१ ॥३६२॥

- ३५५ १ लषमी ।
३५६ १ पर । २ लूटनवाल ।
३५७ १ वरुणादिक । २ ऊट ।
३५८ १ लषी । २ उद्वेग ।
३५९ १ दीक्षा ।
३६० : १ कर ।
३६१ १ अचिरज ।
३६२ . १ जुक्त ।

बूभी लरिका तें मुनि, याकी अरवधि बताय ।
 लरिकें फुनि^१ मुख तें दये, वारह वरष जताय^२ ॥३६३॥
 अंतराय करि कें फिरे, उलटे ही मुनिराय ।
 आये वन में संघ-मधि, करत विचार सुभाय ॥३६४॥

चौपई : ताही समये निमत विचारी, भद्रवाहु बोले तिह वारी ।
 सब ही मुनि सुनिये गुनपाल, परिहै वारह वरष दुकाल ॥३६५॥
 ता तें दक्षिण दिसि कौं चलें, वा दिसी धर्म सघैगो^१ भले ।
 तव वनमें^२ तें आये मुनी, साची मांती जो गुर-भनी ॥३६६॥
 तिन में भद्रवाहु अनगार, दूजे चन्द्रगुप्ति^१ ह्वै लार ।
 ऐ तौ द्वै उद्यान^२ वन गये, लषि इक गुफा तास ढिगि रहे ॥३६७॥

दोहा : भद्रवाहु तौ अरवधि लषि, लियो सकल सन्यास ।
 तप करि काल षियावहीं, करि करि कें उपवास ॥३६८॥

चौपई : तहां करत दोऊ उपवास, काल षियावत धारि हुलास ।
 फुनि मुनि भद्रवाहु यह कही, जो पुर ग्राम^१ नगर ह्वै नही ॥३६९॥
 तौ अहार कौं वनि मुनि जाय, जोग मिलें तौ तहा कराय ।
 अैसे कही जिनागम माहि, सो हू करिये दूषन नाहि ॥३७०॥

सोरठा : यह सुनी गुर के वैन, चद्रगुपति वन जात निति ।
 तव अहार कौं देन, वन देवी इक आय करि ॥३७१॥
 कवहु भोजन ठानि, अंतरीछि वह ह्वै गई ।
 कवहु अकैली आनि, वैठी भोजन देन कौं ॥३७२॥
 इँह विधि लषि मुनिराय, अतराय करि करि फिरे ।
 तप किय मन वच काय, काहू भाति चिगे नही ॥३७३॥
 गाढ परीक्षा माहि, लषि देवी नगरी रची ।
 तहा अहार करारहि, मायामय श्रावगति कें ॥३७४॥

३६३ १ फिरि । २ बताय ।
 ३६६ १ सघैगो । २ उनमें ।
 ३६७ : १ चन्द्रगुपति । २ उद्यान ।
 ३६९ १ ग्राम ।

फुनि कछु काल षिपाय, भद्रवाहु सुरगनि गये ।
 गुर-पादि^१ कराय, चंद्रगुप्ति^२ पूज्यो करै ॥३७५॥
 कवहु अहारहि जात, कव हू वपवास हि करै ।
 तप करि कर्म षियात, इम वीते वारह वरष ॥३७६॥

चौपई : श्रीर विसाषाचारिज आदि, सिषि हजार वारह कछु वादि ।
 सब ही दक्षण दिसि कौ जाय, पाल्यो धर्म सु मन वच काय ॥३७७॥
 वीते अवधि विसाषाचारिज, संघ जुत जहां पादिका-वारिज ।
 आय पूजि पादिका जुपति^१ सौं, चंद्रगुपति मुनि मिले भगति सौं ॥३७८॥
 वृभी तुम अहार किह रीति, वन मै लेत कहौ करि प्रीति ।
 चद्रगुपति कही नगर वसंत, वन मै तहां अहार करंत ॥३७९॥
 फुनि जे आये मुनि विनि वास, तिनु तिह दिन कीन्हौ वपवास^१ ।
 दिवसि पारणे कै अनगार, किते गये पुरि लैन अहार ॥३८०॥
 तिन मै थक^१ पीछी धरि तरु पै, लेय अहार गयो वन गुर पै ।
 यादि आ गई पीछी जव ही, उलटौ लैन चल्यो वह तव ही ॥३८१॥
 तरु परि पीछी लषी महान, लष्यो न पुर कौ आही ठान ।
 तव यह वात सबै गुर पासि, आय^१ कही जिम भई प्रकासि ॥३८२॥
 बोले गुर तुम विना विचार, लीन्हौं मायामई अहार ।
 पै तुम चद्रगुपति धनि मुनी, गाढे रहे धर्म मै गुनी ॥३८३॥
 तुम्हरौ लषि कै गाढ अपार, देवि जुक्ति सौं दयो अहार ।
 पै याकौ यह प्राछित भयो, सो तुम मुनि-पद धारो^१ नयो ॥३८४॥
 करि छेदोपस्थापन नव^१, दीक्षा लीजे फिरि तुम अवं ।
 तव ऐ गुर के उर धरि वैन, दीक्ष्या^२ चंद्रगुप्ति लई अैन ॥३८५॥

३७५ १ पादिका । २ चद्रगुपति ।

३७८ १ जुगति ।

३८० १ उपवास ।

३८१ १ इक ।

३८२ १ आई ।

३८४ १ धारो ।

३८५ १ जबै । २ दीक्षा ।

और मुनी जे लारै गये, तिनहूं सवनं प्राद्यित लये ।

जथाजोग्य गुर-आग्या पाय, तप कीन्हौं तिनु मन वच काय ॥३८६॥

दोहा : नही गये दक्षिण दिसा, रहे यहां मुनि संत ।

शूलभद्र फुनि रायमल, इन दै आदि महंत ॥३८७॥

चौपई · रहे मुनी जे विना विचार, यही मालवा देस मभार ।

दुरभय्य पड्यौ सु ससय नाहि, अति भयभीत भये मन मांहि ॥३८८॥

नगरी में अहार कौं जाय, भूषे मनिष लगै तहां आय ।

करि अहार यक मुनी निसंक, आवत लषि दौरे बहु रंक ॥३८९॥

सब मिलि वाकौ पेट विदारि, पायो काढि जु लयो अहार ।

तव श्रावकनि सुनी यह वात, कंपन लगे जानि उतपात ॥३९०॥

जाय मुनिनु सौं विनती करी, अहो सुनहु हम यह चितधरी ।

लाठी पात्रा राषो हाथि, ले अहार जावो मिलि साथि ॥३९१॥

वन में भोजन करिये भलै, तौ ऐ रंक टलै तौ टलै ।

असैं हू कितेक दिन कीन्ह, तौ हू रंकनि अति दुष दीन्ह ॥३९२॥

तव फिरि पचन मिलि यम कही, निसि भोजन ले जावो सही ।

प्रातः अहार करो मुनिराज, सीत उक्ष्म^१ की करहु^२ न लाज ॥३९३॥

असैं करत ऐक निसि मुनी, आऐ इक श्रावग कै गुनी ।

डरि इक तिय राक्षस-सम हेरि, गर्भ गिरचो ता को तिह वेरि ॥३९४॥

यह फुनि सुनि पंचनि मिलि आय, करि मुनिनु तै अरज सुभाय ।

हे महाराज्य सुनौ अच ऐहु, आघो आघो कम्मल लेहु ॥३९५॥

सिर परि धारो वेठो ताहि, तौ हमरो यह दुष मिटि जाहि ।

तव असैं ही वनु मिलि करी, मरजादा सब ही परहरी ॥३९६॥

सब मिलि करी न काहू चैहरयो, तव तै अर्घफालक-मत ठैहरयो ।

या विधि सौं अहार ले जांही, वन में सीलौ^१ भोजन षाही ॥३९७॥

तौहू रक वहां^१ चलि जाय, दुष दे षोसि अहारहि षाय ।

तव श्रावकनि यहू विधि सुनी, विनयें तुम दुष पावत मुनी ॥३९८॥

गये नगर में तिनहि लिवाय, ठौहर सबको दई बताय ।

पांच सात मिलि इकठां रहैं, भोजन विहरि ल्यात जो चहैं ॥३९९॥

३९३ १ उष्ण । २ करी ।

३९७ : १ सीलौ ।

३९८ उहां ।

जुड़ि क्वाड़ु सव मिलि जीमंत, सो विधि चली जात अरवसंत ।
 वारह वरष विताये येम, फुनि आये मुनि धारी नेम ॥४००॥
 दषिण तैं जु विसाषाचारिज, मुनि दै आदि करत सुभ कारिज ।
 तिन पै थूलभद्र फुनि सव मिलि, सिक्षि एक कौं कही जाहु चलि ॥४०१॥
 देषहु चलन घर्म सव वनकौ^१, ज्यौं ससय भाजैं सव मन कौ ।
 वह सिषि गयो मुनिनु कै यांही, करी वंदना मन हरषांही ॥४०२॥
 वनु^२ प्रति वंदन कीन्ही नांही, वह बलटौ आयो वन^३ यांही ।
 सब हकीकति वनकी^३ कही, थूलभद्र बोले तव यही ॥४०३॥
 प्राछित ल्यौ गुरभाषित सबै, करि छेदोपसथापन अरवै^१ ।
 सव ही मिलि कै दीक्ष्या^२ लेहु, यहां रहे सो विनि सदेहु ॥४०४॥
 तव सव कही अरवै मुनि-ईस, सहि न सकै प्रीसह वाईस ।
 तिनके नाम बहुरि विधि सुनौ, कसैं सहैं सु तुम हीं भनौ ॥४०५॥

सोरठा :

षुध्या त्रषा^१ अरु सीत, उक्ष्म दंस मंसक बहुरि ।
 नगनपनी अति भीत, ऐ षट कसैं सहि सकै ॥४०६॥
 अरति परीसह जानि, घर सूने मधि ध्यान दे ।
 जीवदया जिय ठानि, पिछले भोग न चितवै ॥४०७॥
 स्त्री-परीसह ऐह, सहस अठारा वाडिजुत ।
 सील धरै निज देह, तिय निरषन बोलन तजै ॥४०८॥
 चर्या यह तू जानि, चलै पयादे मग निरषि ।
 कंटक भागै आनि, तौह रहैं उवांहने ॥४०९॥
 निषद्या है यह ठीक, चले जात रवि अस्त ह्वै ।
 तिह ठांही तैह तीक, बैठी जांहि निसि वीर मुनि ॥४१०॥
 सज्या-परीसह जोय, ह्वै धरती कंकर तरणी ।
 ऊंची नीची होय, तापै सोवै निसक मुनि ॥४११॥
 यहै जानि आक्रोस, मरमछेदि निंदा करै ।
 नाहक दे को दोस, क्रोध न करै सबै सहै ॥४१२॥

४०२ . १ उनकौ ।

४०३ . १ उनु । २ उन । ३ उनकी ।

४०४ . १ सबै । २ दीक्षा ।

४०६ . १ त्रिषा ।

वध जु सस्त्र की घात, करै कोय सो सब सहै ।
 यह जाचनां विष्यात, काहू पै मांगे नहीं ॥४१३॥
 यह अलाभतु जांनि, भोजन जब मिले नहीं ।
 तव मन मैं दुष आंनि, कोप विलाप करै न मुनि ॥४१४॥
 रोग-परीसह ऐह, महारोग करि प्रस्त ह्वै ।
 जो अपनीं निज देह, तौ करिवो न कहै जतन ॥४१५॥
 त्रिण सयरस सुणि मित त्रिणां बहुरि कटक अधिक ।
 लगै देह कै संत, टालै नाहीं दुष सहै ॥४१६॥
 मल-प्रीसह मुनि जांन, लागै मेल सरीर कै ।
 तऊ न करै सनांन, वाकौ भूषन-सम गिनै ॥४१७॥
 पुरसकार सतकार, ऐक जांनि को काज मै ।
 विनय न करै लगार, तौ अपमान सहै मुनी ॥४१८॥
 प्राया^१ सुनहु सुजांन, आप पढ्यो ह्वै बहुत जो ।
 तौ न करै अभिमान, सांत-भाव राखै सदा ॥४१९॥
 यहै कहै अग्यांन, जो निज होय प्रवीन अति ।
 क्रोध न करै प्रमान, जो कोऊ मूरिष कहै ॥४२०॥
 यहै अदरसण ठीक, ग्यांनवांन निज तप करत ।
 रिधि नहि होय नजीक, तौ न विचारै वात यह ॥४२१॥
 मैं अंसो तप कीन, तौ ह रिद्धि^१ न उपजी^२ ।
 यह न विचारै दीन, तप दीक्ष्यादिक भूठ है ॥४२२॥

दोहा : अहो हमारे नाथ तुम, धूलभद्र मुनिराय ।
 हम तै ऐ प्रीसह अवे, सही कौन विधि जाय ॥४२३॥

चौपडै . तव वन कही ये पेट तौ भारी^१ हों, अगिलै जनम नरकि ही परिहों ।
 यह सुनि सब मिलि वात न मानी, वा सौं बुरी करी मन मानी ॥४२४॥
 वह मरि प्रेत भयो सब जान्यो, सबको दुष दीन्हों मन मान्यो ।
 तव वा सौं मिलि विनती कीन्ही, तुम दुष देत सु सब हम चीन्ही ॥४२५॥

४१९ १ प्रया ।

४२२ १ रिधि । २ ऊपजी ।

४२४ १ मरि ।

अब हम ऊपरि किरपा कीजे, जिह विधि चलै सु चलिवा दीजे ।

तौ हम पाय पूजि निति तुम्हरे, जीमै हौ तुम सतिगुर हमरे ॥४२६॥

दोहा : जब तै पूजत प्रथम ऐ, धरि पाटी परि पाय ।

कोऊ अस्ति वतांवहीं, पूजत मन वच काय ॥४२७॥

चौपई : अर्धफालक सब देसनि मांहि, फँल्यो मत यम संसय नांहि ।

अैसे काल वितीतौं घणौ, वरष सैकड़ा फुनि तुम सुणौ ॥४२८॥

भऐ उजेणी विक्रम भूप, माता पद्मावती^१ अनूप ।

गंधवसेन पिता तसु जानि, हौ विद्याधर वह गुनषांनि ॥४२९॥

विक्रम, प्राकर्मी चहु धनी, धर्मवांन दांती वहु गुनी ।

तिनु बुलाय पंडित रिष सब, नमि विनती म^१ कीन्ही जब ॥४३०॥

संवत्त नयीं चलावन तनीं, मेरै भाव उपज्यौ घनीं ।

वै बोले भगरौ पाछिलो, मेरै^१ संवत चलि है भलौ ॥४३१॥

दोहा : लैन दैन वोरन कौं, धन दै कलहि^१ मिटाय^२ ।

तिह विक्रम भूपति नयी, संवत दयो चलाय ॥४३२॥

चौपई . फुनि विक्रम तौ सुरपुरि गऐ, केते वरष वहुरि वीतऐ ।

वरष ऐकसौ भऐ छतीस, तवै वजेणीं^१ भऐ महीस ॥४३३॥

चंद्रकीर्ति हौ ताकी नाम, चंद्रसिरी भई ताकी वांस ।

तिनकै सुंदर पुत्री भई, नाम चंद्ररेषा गुनमई ॥४३४॥

दोहा . ताहि पढाई भूप वन, अर्धफालकनि पासि ।

सांतिकीर्ति कौ सिध्य हुतौ, जिणचंद नाम प्रकासि ॥४३५॥

सौ तौ कनवज देस कौं, गऐ सु ताहि पढाय ।

फुनि कन्यां जोवनसहित, देखी जब ही राय ॥४३६॥

सुन्दर सोरठ देस मै, वलभा नगरी जानि ।

प्रजापाल नृप कै तिया, प्रजावती गुनषांनि ॥४३७॥

४२६ : १ पद्मावती ।

४३० : १ इम ।

४३१ . १ मेटे ।

४३२ . १ कलह । २ मिटाइ ।

४३३ . १ उजेणीं ।

लोकपाल ताकौ नतय, ताहि दई परणाय ।
 ससिरेषा कन्या वहै, हय गय दै बहु चाय ॥४३८॥
 प्रजापाल सुरगनि गयी, लोकपाल हुव राज ।
 काहू दिनि अति प्रस्न^१ लषि, तिय बोली तजि लाज ॥४३९॥
 अहाँ भूप मेरो^२ जु गुर^३, है कनवज कै देस ।
 ताहि बुलाय यहां अवं, कीजे^३ भक्ति विसैस ॥४४०॥
 नृप मन्त्री नु षिनाय करि, लीनें तिन्ह^१ बुलाय ।
 साम्हे चाले भूप हू, ल्यावन कौ चित चाय ॥४४१॥
 लषि वन कौ वह रूप जव, नही वस्त्र कछु^१ पासि^२ ।
 नही दिगांबर^३ रूप यह, नृप तव भए उदास ॥४४२॥
 विचि ही तं आऐ सु उठि, वन पं गये न राय ।
 तव नृप कौ राणी सवै, जानि लयो^१ अभप्राय^२ ॥४४३॥
 मंत्रिनु कौ षिनवाय करि, राणि वन कै पासि ।
 स्वेत वस्त्र लाऐ तिन्है, बहु विधि करि अरदासि ॥४४४॥
 तव नृप साम्हे जाय फुनि, ल्याऐ नगरी माहि ।
 भक्ति करी जिणचद की, भाव-सहित अधिकांहि ॥४४५॥
 तव तं मत ठहरयो यहै, स्वेतावर^१ सु कहात ।
 भद्रवाहु के चरित मैं, भाषी है यह वात ॥४४६॥
 फुनि चौदह उपकरण ऐ, नए नए ठहराय ।
 यनके^१ मत के जतिनु कौ, राषन दए वताय ॥४४७॥

उपकरण-नाम

दोहा : राषौ तीन पछेवड़ी, बहुरि धोवती तीन ।
 तीन पातरा काठ के, लाठी ऐक नवीन ॥४४८॥
 बोधा दोय जु ऊन के, ऐक मोहपती जोरि ।
 पात्रा कं मुषि वाधणी, ऐक तर्पणी डोरि ॥४४९॥

- ४३९ १ प्रश्न ।
 ४४० १ मेरे । २ जगुह । ३ कीज्ये ।
 ४४१ : १ तिनहि ।
 ४४२ १ कछु । २ पास । ३ दिगांबर ।
 ४४३ १ लियो । २ अभिप्राय ।
 ४४६ १ स्वेतावर ।
 ४४७ : १ इनके ।

ऐ सब चौदह उपकरण, राषण मै नहि दोष ।
 असें कहि सबकों कियो, मत स्वेतावर पोष ॥४५०॥
 नए बनाए गृथ बहु, आगम^१ वहुरि सिधांत । -
 तिनमै भाषे सो कछुक, सुनिऐ भवि विरतांत^२ ॥४५१॥

चौपई : जनम कल्याणक पूजा करै, आंगी रचि जग कौ मन हरै ।
 देहरांनि कौ चलन मिटाय, उपासिरा दीन्हे ठहराय ॥४५२॥
 प्रतिमां प्रभु की थार्य जहां, जुड़ि किवाड़ भोजन ले तहां ।
 फुनि गृथनि मै जो विपरीति, भाषी सो सुनिऐं करि प्रीति ॥४५३॥

सोरठा : ऐ चौरासी बोल, नए सथापे वहसि करि ।
 तिनकी कथा कलोल. कछुयक यह वर्नन^१ करूं^२ ॥४५४॥

अथ चौरासी बोल परि हेम कृत छंद छपै^१ ।

कवित्त : केवली अहार करै मानै तिन्है लागत है,
 दूषन अठारै परमाद महा मोहिए ।
 मोह के विनासकारी वीरज अनंत घारी,
 जिन्हें भूष लागै असें कहत न सोहिए ॥
 भुजत अनंत सुष भोजन तै कौन काज,
 आदित कै उदै कहौ कहा दीप वोहिए ।
 काहू परकार इनकै न कवैला अहार,
 जे कहै है तिनके जग्यौ है ग्यांन को हिए ॥४५५॥
 मोहनी करम नासै वेदनी कौ बल नासै,
 विसकै^१ विनासै ज्यौ भुजंगम की हीनता ।
 ईंद्रीनि के ग्यांन सौं न सुष दुष वेदै जहां,
 वेदनी कौ स्वाद वेदै ईंद्रीनि की षीनता ॥
 आतमीक अतर अनंत सुष वेदै जहां,
 वाहरि निरतर है साता की अछीनता ।

४५१ . १ आगम । २ विविरतात ।

४५४ . १ वर्नन । २ करौं ।

४५५ . १ missing ।

४५६ . १ विसकौं ।

तहां भूष आदिक असाता कहां बल करै,
 विष करिण कान करै सागर मलीनता ॥४५६॥
 देव मानसी कही अहार तै अपति^१ होय,
 नारकीक जीवनि कौ कर्म की अहार है ।
 नर तिर जच कै प्रगट कवला अहार,
 ऐक इंद्री धारक कै लेप कौ अघार^२ है ॥
 अड़े की विरिधि ह्वै उजाआहार^३ सेवन तै,
 पंषी उर^४ अंषमा तै ताकी बढ वार है ।
 नौ कर्म वर्गनां कौ केवली कै है अहार,
 देह अविकार कहै जो न सविकार है ॥४५७॥

दोहा : और जीव कै लगत नहि, तन पोषक सुषदाय ।
 समय समय जगदीस कै, लगै वर्ग नां आय ॥४५८॥

छुपै : शुध्या त्रिषा^१ भय दोष रोग जर मरण जनम मद ।
 मोह वेद पर स्वेद नौद विसमय चितागद ॥
 रति विषाद ऐ दोष नांहि अष्टादस जाकै ।
 केवल ग्यान^२ अनत दरस सुष वीरज ताकै ॥
 नहि सप्त घात सब मल रहित परमो दारिक तन सहित ।
 अंतर अनंत सुष रस सरस सो जिनेस मुनिपति महित ॥४५९॥

दोहा : कल्प^१ विकल्पी कहत हैं, और दोष विकराल ।
 निरमल केवल नाथ कै, है निहार मल जाल^२ ॥४६०॥
 जाहि अहार बने नही, तँह क्यों होय निहार ।
 परगट दूषन देषिये, इसमै कौन विचार ॥४६१॥

चौपई : जे मुनि तपति रिद्धि के धारी, गहत अहार हिये न निहारी ।
 कहि क्यों सकल जगत कौ स्वांमी, करै निहार अमल पद गांमी ॥४६२॥

४५७ : १ त्रिपति । २ प्रकार । ३ उजाहार । ४ बर ।

४५९ . १ त्रिषा । २ ज्ञान ।

४६० . १ कल्पि । २ लाज ।

दोहा : जाकों देषि मिटै विकट, घोर उपद्रव वरग^१ ।
दोष दोय ताकै कहै, रोग और उपसर्ग ॥४६३॥

कवित्त : कहै कोऊ क्रोधसाला^१ हुचौ है गोसाला मुनि,
तिन तै ज्वाला-माला छूटी परजलती ।
वीर के समोसरन दहि मुनि दोय तिन,
ताकी भल रवामी हूं कौ पहुंची उछलती ॥
तहां भयौ उपसर्ग ताही ऊषमां तै फिरि,
उदर की व्याधि भई आंम लोहू चलती ।
परगट दोष जानि तजै आंसो सरधान,
ग्यानवांन जिनकै सु जोति जगी बलती ॥४६४॥

दोहा : जनमत ही मति श्रुति अवधि, तीन ग्यांन घट जास ।
कहैं पढचौ चट साल स्यौं, वर्द्धमान गुनवास ॥४६५॥
कहैं और सितवास मत, जव जिन होय विराग ।
एक वरस लौं दान दे, अंत करै घर त्याग ॥४६६॥
जिन वैराग्य दसा धरत, त्यागे सब परभाव ।
कहा जानि अपनों करै, पाछै दान बताव ॥४६७॥
धरी दिगंबर जिन दसा, पाछै अंबर आनि ।
इंद्र धरै जिन कंध पर^१, यह संसय मति मांनि ॥४६८॥

चौपई छंद गणधर विनां वीर की वांनी, निफल धिरी नही^२ काहू मानी ।
वेसरि^१ : समकित वृत का भया न धारी, कोऊ तहां कहै सविकारी ॥४६९॥

दोहा वांनी धिरयन^१ धिर धतौ, होय सफल तैहकीक^२ ।
धिरै फल विनां जे कहैं, तिनकी वात अलीक ॥४७०॥

अरिल : लोकनाथ सौ जिनवर जाकौ पूत है,
तिस माता कौ कहैं और परसूत है ।

४६३ १ वर्ग ।
४६४ १ क्रोधसाला ।
४६८ १ परि ।
४६९ : १ Missing । २ नहि ।
४७० : १ धिरन । २ तहकीक ।

आदिनाथ कौं प्रगट कहत हैं जुगलिया,
तिनकौं ही फिरि कहैं भये ते पति तिया ॥४७१॥

चौपई : कहै जुगलिया कोऊ सूवो, ताकी तिय हि रड़ायो हूवो ।
सोही रिषभदेव धरि आनी, भई सुनंदा दूजी रानी ॥४७२॥

सोरठा : कराहिन^१ निदक^२ काजु, जो सांमीनि^३ के होय जन ।
क्योंकरि श्री जिनराज, करे अकारिज विधि करम ॥४७३॥

छुपै : कोऊ कोऊ कहै रिषभ थौ विप्र तास तिय ।
देवा नंदा तासु गर्भ जिनवीर अरवतरिय ॥
दिन अस्सी अरु तीन लयो प्रभू वास तहां हीं ।
तवै ईंद्र यह वात विचारि है मन माही ॥
हीन जाति द्विज कुल विषै, महा पुरष अरवतार ।
जोग्य नहीं ताते करौं, और गर्भ संचार ॥४७४॥

सोरठा : दियो^१ ईंद्र आदेस, हिरन गवेषी देव कौं ।
करवायो परवेस प्रभु, त्रिसला के गर्भ मैं ॥४७५॥

चौपई : पहिले गर्भ क्यों न हरि लीनों, गएं तियासी दिन क्यों कीनों ।
पहिले का जानत हो नाहीं, कहौ विचारि धारि मन मांही ॥४७६॥

अरिल : दुज घरिवा सिद्धारथ धरि प्रभु संचरघौ,
गर्भ कल्यांनक कहौ कहां जिन कौ करघौ ।
जो द्विज धरि भौ होय हीनता ईस की,
सिद्धारथ धरि न वनै क्रिया जगीस की ॥४७७॥
द्वै दोन्यो धरि तौ कल्यान कछह गनों,
जो दोन्यो कै न हितौ च्यारचौं ही भनों ।
सील भंग तौ होय जिनेश्वर मात का,
यात वीरज नाहि सिधारथ तात का ॥४७८॥

४७३ . १ करहिन । २ निदक । ३ सामानि ।

४७५ . १ दयो ।

चौपई : जहां वात का नांहि नवेरा, तिह^१ कल्पित करि कहै अछेरा ।
 असी वांनी मूढ वषानै, दरसन मोह लीन सरधानै ॥४७६॥

दोहा : पंच कुमार जिनेस हैं, सत्यारथ मत मांहि ।
 मल्लि नेमि एई कुमर, कहै द्वै अवर नांहि ॥४८०॥
 तीर्थकर जिन कौ नमै, सांमानिक जिनिराय ।
 कहै बाहुवलि केवली, नमो वृषभ^१ के पाय ॥४८१॥

कवित्त^१ : अरिहंत पद वंद्य^२ वंदक सरूप मेरो,
 असे भाव परमाद गुनताई वहै हैं ।
 सातमी धरातै आगे आतमी^३ करस जागै,
 तहां वंद्य वंदक विभाव नाहि रहै हैं ॥
 साधक दसा मै जहां वाधक है असा भाव,
 तहां जिन जिन वंदै मंद बुधी^३ कहै हैं ।
 परवा सरूप धारी वीतराग अविकारी,
 वंदनीक एकै मानी ग्यानीसर दहै हैं ॥४८२॥

सर्वैया^१ : केवल ग्यान विषै ज्यन वीर कहै अनजानै अचानक छीक्यौ ।
 सो न वनै जब छीक उठै जब वात कफा मय व्यापत जी कौं ॥
 धातु विवर्जित निर्मल ईस सरीर विषै नही रोग रती को ।
 छीक कलंक अटकित अंकित शुद्ध दसा तहां दोष नहीं को ॥४८३॥

अरिल : तिरदडी तापसी कुलिंगी भेष सौं,
 आवत सुनि जिन वीरनाथ उपदेस सौं ।
 गोतम स्वांमी गणधर वृतधर जैन कौ,
 ताकै सनमुषि^१ गयो भगति सौं लेन कौं ॥४८४॥

दोहा : धारक संम्यक दरसनी, करै न कुमती मान ।
 क्यौं करि गणधर पूज्य पद, करै सुभक्ति विधान ॥४८५॥

४७६ : १ तंह ।

४८१ . १ रिषभ ।

४८२ : १ सर्वैया । २ आतमी । ३ बुद्धी ।

४८३ : १ सर्वैया २३ सा ।

४८४ : १ सनमुष ।

जाकी सोलह स्वर्ग तें, आगे नाहीं गंम्य ।

तिस नारी कौ यौ कहेँ, रमै मोष्य पद रंम्य ॥४८६॥

कवित : जाके सब मलद्वार धारें है निगोवि भार,

कवह न अविहार हिंसा तें रहत हैं ।

सिथल सुभाव लियें परपंच सच कियें,

लाज कौ समाज धरे अंवर चहत हैं ॥

छठे गुण थान मांहि थिरता न ध्यान माहि,

मांस मांस रितु ताहि सकता लहतु^१ हैं ।

जगत विलविनी कौ हीन दसालविनी कौ,

यातें ही नितविनी कौ मोषि न चहत हैं ॥४८७॥

दोहा . मुक्ति कामिनी कौ रमै, एकं पुरिष विसेष ।

रमै न कामिनि कामिनी, यह परगट ही देव ॥४८८॥

अरिल दोहा^१ समय विरोधी देषिये, परगट वितथ विचार^२ ।

मल्लिनाथ जिनकौ कहेँ, मली कुमारी नारि ॥४८९॥

अरिल : सुरग भूमि पाताल लोक में देषिये,

नारी नाथ सुनी कवह न विसेषिये ।

जगत बंध अरहत^१ देव पद क्यौ धरे,

नर अधीन जो हीन निदि पद आचरे ॥४९०॥

चौपई . जो नारी कौ नर पद मानौ, तो ताकी प्रतिमा किन ठानौ ।

पुरिष अकार एक ही बंदौ, नारी रूप क्यौ न अभिनदौ ॥४९१॥

जो नितविनी विव न सोहै, कुच रूपादिक मडित होहै ।

तौ लज्जा करि कामनि रूपी, क्यौ करि जिनवर होय अरूपी ॥४९२॥

दोहा जाके दरसण^१ परस तें, रागादिक मिटि जाय ।

तिस नर रूपी ईस कौ, बंदौ सीस नवाय ॥४९३॥

४८७ १ लहत ।

४८९ : १ missing । २ विचारि ।

४९० . १ अरहत ।

४९३ : १ दरसन ।

चोपई कहै जुगल हरिषेत्र निवासी, काहू देव हरद्यौ सविलासी ।
 पूरव वैर दषि दुष दीनों, भ्रवगांहन करि छोटो^१ कीनों ॥४६४॥
 सोही^१ भरथषंड फिरि आंन्यो, मुथरा नगरी राज दिवांन्यो ।
 पापी करि तिन मांस षवायो, नरक नगर कै पंथ चलायो ॥४६५॥
 तिसकै कुल हरिवंस वषांनै, सत्यारथ उपदेस न मानै ।
 जुगल सर्व ही स्वरगति^१ गांमी, नरक न सेवहि रिजु परणांमी ॥४६६॥
 तीन कोस की तिनकी काया, स्वर क्यौं करि लघु रूप बनाया ।
 जो तुम इसहि अछेरा मानौं, तौ भी नांहि वनै मनि आंनौं ॥४६७॥
 काल अनंतानंत भये तै, एक एक ही जुगल गये तै ।
 सव हरिषेत्र भूमि का षाली, ह्वै कौं^१ मिटै जुगल परनाली ॥४६८॥

दोहा : सव गिराती के जुगल है, घटै वढै नहि कोय ।
 मरण काल ही जुगल कै, आय जुगलिया होय ॥४६९॥
 राषतु^१ चौदह उपकरण, मुनि कौं नांहि नु दोष ।
 परिग्रह त्याग दसा विषै, करै परिग्रह पोष ॥५००॥
 जहां प्रभांगूं सम नही, परिग्रह ग्रह कौं रंच ।
 तहां कहीं क्यौं करि वनै, बख्खादिक परपंच ॥५०१॥

कवित्त : काल पाय मैले होय आसा होय धोवन की,
 धोयें नसै संजम आरंभ विसतारै^१ है ।
 नास भये मांगन कौं त्रास होय नासन के,
 डरतै सु ध्यान विषी^२ थिरता विडारै^३ है ॥
 देहु द्रुति मडन है ब्रह्मचर्य छंडन है,
 जिन लिंग षंडन है तातै पट डारै है ।
 संवर धरनहार अंवर सौं अविकार,
 होय कै निरंवर दिगंवरहि धारै है ॥५०२॥

४६४ : १ छोटी ।

४६५ : १ सोई ।

४६६ : १ स्वर्गति ।

४६८ : १ कै ।

५०० : १ राषत ।

५०२ : १ बिस्तारै । २ विषी । ३ बिस्तारै ।

दोहा : समयादिक परजाप कौं, काल दर वस मुझाहि ।
 काल अरू जागौ नही, जै असंख्य जग माहि ॥५०३॥

छपै : काल अरू जो नाहि समय तो होय कहां तै ।
 सुथिर वस्तु विन नाहि नास उतपति तहां तै ॥
 असत्त जनम जै होय होय घर श्रंग जगत मै ।
 बुद्धि होय परमान और विनभगुर मत मै ॥
 नहि सधै वस्तु सीमां विमल जनम नास थिर भाव विन ।
 थिरत^१ निमत समयादिकी काल अरू जगि कहहि जिन ॥५०४॥

कवित : मानै मनस वृत कै गणधर घोरो भयो,
 काहू काज कै निमत मांस मुनि गहै हैं ।
 घरि २ विहरि २ अंघ्र मागि ल्यावै,
 कहै मुनि थान आनि भोजन कौं लहै हैं ॥
 निज मत निंदक कौ ठौर मारै पाप नांही,
 निर्दय सुभाव घरि काहू की न सहै हैं ।
 साची वात भूठी कहै भेद बख कौ न लहै,
 हठ रीति गहिर हैं मिथ्या वात कहै हैं ॥५०५॥
 भरथ नै ब्रांही वहन^१ कहै नारी कीनी,
 महासती दोष लाइ भववास चहै हैं ।
 ग्रहवास बसत ही केवली भरथ भयो,
 आरसी के मदिर में मानि निरवहै हैं ॥
 द्रोपदी सती कौ कहै भई पंच भरतारी^२,
 अघ बंध भारी करि सकट में फहै हैं ।
 साची वात भूठी कहै बख^३ कौ न भेद लहै,
 हठ रीति गहि रहै मिथ्या वात कहै हैं ॥५०६॥
 कोऊ मुनि कंध परि पथ में गुरू कौं लिये,
 चल्यौ जात केवली भयो है सरदहै हैं ।

५०४ . १ थिरता ।

५०५ १ missing ।

५०६ : १ वहै । २ भई not in A । ३ बस्तु ।

कहैं है जवाई वीर नाथ कौ जमाली नामां,
 वीर है कुमारो सुनि लरने कौ षहै हैं ॥
 ध्रुवकि-ध्रुवकि^१ करि केवली कपिल नांच्यो,
 मूरिष रिभांवन कौं असी मांनि रहै है ।
 सांची वात भूठी कहैं वस्तु कौ न भेद लहैं,
 हठरीति गहि रहौं^२ मिथ्या वात कहैं हैं ॥५०७॥

छुपै : कहहि बहुत्तरि सहस भई वसुदेव-वधुगन ।
 धनुष^१ पंच सै उच्च वाहुवलि कहैं धरच्यौ तन ॥
 सूद्र-जाति-घरि असन करत मुनि दोष न पावै ।
 देव मनुषिणी भोग-भोग वहि सुरत वढावै ॥
 इक गर्भ माहि सुलसा धरे, सुत वत्रीस जनै भनहि ।
 पहिले त्रिपिष्टि^२ हरिदेव^३ की, नांनां तै उतपति गनहि^४ ॥५०८॥
 मांनिहि वीर विहार अनारिज देस भूमि पर ।
 कहहि मलेछ चतुर्थ काल सारै हूऐ भर ॥
 देव-कोस सै च्यारि-कोस कौ तन अव धारय ।
 प्राणघात वृत-भग करत नहि पाय विचारय ॥
 उपवास मांनि वोषदि^१ भषत, वृती न धारहि दोष मल ।
 चौसठि-हजार नारी गिनै, चक्रवर्त्ति धरि तनु नवल ॥५०९॥
 समोसरन जिन नगन नांनि दीसै परवांनिहि ।
 अविक्त तन में वख राग-कारण सरधानहि ॥
 लाठी राषै जती कहै अस कर्म^१ वधावहि ।
 गज ऊपरि ही मुक्ति^२ गई मरुदेवि वतांनिहि ॥
 नारी अगम्य^३ दुरधर कठनि पच महाव्रत-पद धरहि ।
 नहि लहहि दोष बलहीन मुनि वार वार भोजन करहि ॥५१०॥

छंद गीता . दरवित क्रिया विन भार्वालिग गृहस्थ किदल^१-पद धरै ।

चिडाल-आदिक जाति निंदित मुक्ति तदभव वसि करै ॥

५०७ : १ ध्रुवक-ध्रुवक । २ रहैं ।

५०८ . १ धनुष । २ त्रिपिष्टि । ३ हरदेव । ४ मनहि ।

५०९ . १ वोषधि ।

५१० . १ कर्म । २ मुक्ति । ३ A अगम्य ।

५११ . १ केवल ।

आभरण^२सहित जिनेस-प्रतिमा राग-कारण मानते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपना सरधानते ॥५११॥
 साभरण^१ सब सनमुक्ति^२ जे हँ मोनि परिगृह हठ गर्हे ।
 रवि-चद-मडल-मूल आया वीर वदन कौ कर्हे ॥
 साहुती गति मरजाद मेटहि सूर-ससि की जानते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधानते ॥५१२॥
 दूषन अठारह मांहि वदलै कहहि और सवारिकं ।
 चौतीस अतिसय वदलि केई गहहि और विचारिकं ॥
 जिनमत-निवासी सौ लरहि मुनि दोष रचनां ठानते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधानते ॥५१३॥
 सौधर्म स्वरपति जीतिवे कौ चमर वितरपति^१ गयो ।
 तसु वज्रदड विलास-षंडित कहहि^२ वीर-सरनि भयो ॥
 कर पूरवत मरि गएँ न धिरै जुगल-तनु-परवानते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधानते ॥५१४॥
 निर्वाण^१ होत जिनेस-काया धिरै दांमिनिवत नही ।
 वर नारि दे धिर करै श्रावक देषि कामी मुनि कही ॥
 केवली तनतें जीववध ह्वै कर्हे मत मद-पानते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधानते ॥५१५॥
 सुरगि लै जिनदाढ पूजहि ईद्र जिन जव सिव गर्में ।
 जिन वीर मेर-अचल लायो जनम कल्यांनक समैं ॥
 जिन-जनम-सूचक स्वपन^१ चौदह और नहि मन आनते ।
 अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधानते ॥५१६॥

दोहा : गगादेवी सौ कहै, पचमन वरष हजार ।
 चक्रवर्त्ति भरतेस नै, कियो भोग-विवहार ॥५१७॥

-
- ५११ २ आभरण ।
 ५१२ १ साभरण । २ मुक्ति ।
 ५१४ १ व्यतरपति । २ कर्हेहि ।
 ५१५ १ निरवान ।
 ५१६ १ सुपन ।

अरिल : भोग भूमि छद्यांनवे नगनहि उछेदि कै,
 चर्म नीर नै दोस न लावहि वेदिकै ।
 घृत करि साधित बासी भोजन लेत^१ है,
 सारे फल कौं भुंजत दोष न देत^२ है ॥५१८॥

कवित : रिषभ विरागत निमति नीलजसा नृति^१,
 मानै नांहि देव देवि कीनी^२ जो विधान की ।
 मात-पिता जीवते विराग ताकौं नांहि धरें,
 वीर वर्द्धमान जिन गर्भवास श्रान की ॥
 बाहुवलि कौं कहैं कि युगल^३स्वरूपधारी,
 हाड पूजै कौडे थापि कहै परठान की ।
 नाभि मरुदेवी कौ जुगलधर्म मानतु है,
 तिन ही तै जिन-उतपति सरधान की ॥५१९॥

चौपई : हौंहि जुगलिया सव मलधारी, कहै सिलाका-पुरिष निहारी ।
 चौसठि इंद्र न अधिके जानै, वारह देवलोक ही मानै ॥५२०॥
 जे जादौं जिन मारिग पक्षी, तिनकौं कहै मांस के भक्षी ।
 मनुज मानषोतर कै श्रागै, जेहै कहै न दूषन लागै ॥५२१॥

छंद रोडक : नांही है नाही है काम चौवीस ॥
 अरु नव-नवोत्तरे लघु समुद्र मानत नांही ।
 श्रैरापति भरत तजि षेत्र ऐकसौ साठि मांही ॥
 चौरासी लष जौनि हैं, ऐ चौरासी वोल ।
 जे मानै ते मानि हैं, भवसागर-कल्लोल ॥५२२॥

दोहा^१ तिनहू तै लौंका ढूढिया, निकसि जुदे मत कौं थापिया ।
 प्रतिमा तिनु पूजन तजि दई, दोष कहे यामे अधिकई ॥५२३॥
 तिनमे लौंका सुचि तौ रहैं, ढूढचा महा असुचि^२ कौं गहैं ।
 नहि आचार विचार न कोय, जातै धर्म^३ सव सुभ होय ॥५२४॥

५१८ १ लेतु । २ देतु ।

५१९ १ नृत्य । २ कीनी । ३ मुगल ।

५२३ १ चौपई ।

५२४ : १ अशुचि । २ धर्म ।

इनकी चलन जगत सब जानें, गृथ माझि अब कहा वषांनै ।
परगट दीसत छांनों नांहीं, तातें वरनन कहा कराहीं ॥५२५॥

दोहा : मत स्वेतांवर^१ में वहरि, लषियत^२ अत्र प्रतच्छ^३ ।
फाटे मन मद ठानि सो, हैं चौरासी गच्छ^४ ॥

कवि वचन

दोषभाव धरि नहि कियो, कियो न निज-मत-पोष ।
सत्यारथ उपदेस यह, करै सुजन संतोष ॥५२६॥
सत्यारथ वानी प्रगट, घट-घट करै उदोत ।
ससय-तिमर मिटै पटल, बढै ग्यान सुष होत ॥५२७॥

॥ इति बोल सपूर्ण ॥

अथ द्रावड-संघ-उत्तपति-वर्नन

दोहा : द्रावडसंघ उत्तपति^१ भई, जिम भाषी मुनि ईस ।
सवत वीतें पांच सैं, ऊपरि और छतीस ॥५२८॥

चौपई : मुनि श्रीपूज्यपाद गुणषानि, वञ्चनंदि तसु चेला जानि ।
पाहुडोनि^१ वेता तन षीण^२, सर्वसाख में महाप्रवीण ॥५२९॥
इक दिन^१ चेलै क्रोध उपाय, दक्षिण मथुरा कै मधि-आय ।
द्रावडसघ नयो ठंहराय^२, नये नये सिद्धांत वणाय ॥५३०॥

चौपई^१ . भाषी वीज मद्धि नाहि^२ जीव, है प्रासुक नहि दोष सदोव ।
षेती विणज आदि बहु कर्म, करि जीवो यामें न अधर्म ॥५३१॥
सीतल जल के करे सनांन, तिन कै अघ अति होत^१ सुजान ।
इन्हें आदि विपरीति जु वात, करि द्रविड^२-सघ कियो^३ विष्यात ॥५३२॥

५२६ १ स्वेतावर । २ लषियत । ३ प्रतच्छ । ४ गच्छ ।

५२८ १ उत्तपति ।

५२९ १ पाहुडानि । २ षीन ।

५३० १ दिन । २ ठंहराय ।

५३१ १ A missing । २ नहि ।

५३२ १ होय । २ द्रावड । ३ कीयो ।

अथ ज्यापनीय-संघ-उत्पत्ति[†]-वर्नन

दोहा : साल सात सै पांच कै, संघ चलयौ अघ-घांम ।
 पुर कल्यांनवर कै विषै, ज्यापनीय यह नाम ॥५३३॥
 तहां ऐक श्रीकलस मुनि, तिनहं नये सिधंत ।
 करि वातें जु धरि सु अब, कछुयक सुनौं व्रतंत ॥५३४॥
 कलपसूत्र स्वेतांवरनु, नयो वणायो ताहि ।
 मानौं^१ फुनि पूजा करो, रतन-त्रय की चाहि ॥५३५॥

सोरठा : माने दुहुंके वैन, दिगंवर फुनि स्वेतपट ।
 लहैं कौन विधि चैन, जमीकौ न असमान कौ ॥५३६॥
 फुनि यह कही असार, खी जाय पहुचै मुक्ति ।
 ले केवली अहार, मोषि लहै सर गृथह ॥५३७॥
 वातें धरि विपरीत, और कितेक सिधात में ।
 संघ त्यागि निज रीति, ज्यापनीय परगट कियो ॥५३८॥

अथ काष्ठा-संघ-उत्पत्ति वर्नन

दोहा : संघ कासटा की भई, उत्पत्ति मनो उपंग ।
 साल सात-सै-त्र्याणवै, कौ निकस्यो यह संघ ॥५३९॥

चौपई : ग्राम नंदियड़ इक अति वसै, विनयसेनि यक मुनि तं लसै ।
 ताकै चेलो कुमारसेन, भयो मुनी धारक मत्त जैन ॥५४०॥
 तिय यक समये धरयो सन्यास, ज्यावत जीव सु ठानि हुलास ।
 बैठौ एक ठौर मुनिराय, सर्व वस्त कौ त्याग कराय ॥५४१॥
 दिन कितेक में उपजी ताकौं, पुध्यादिक वाधा अति वाकौं ।
 तव वन^१ नहि निज धर्म विचारयो, करि अहार सन्यास विगारयो ॥५४२॥

५३३ : १ उत्पत्ति ।

५३५ : १ मानहु ।

५४२ : १ उन ।

†The less popular sect of the Jains, besides the well known Digambara and Svetambara Sanghas. Little research has so far been made on the Yapaniya literature. Dearth of material coupled with its close affinity with the Digambara sect makes it still more difficult to differentiate between the two. However, Kanarese Jain works would come to our aid, when they have been discovered and a proper assessment of the same has been made.

फुनि वह बडे मुनिनु पै गयो, सब विरतांत आपनों कह्यो ।
 मुनिनु कही फिर दीक्ष्या लेहु, करि छेदोपस्थापन ऐहु ॥५४३॥
 वाने विद्यो कौ मद ठानि, दीक्ष्या फिर नहि लीनी जानि ।
 नए साख तिन लये वनाय, प्रतिमां काठ-तरणी बरावाय ॥५४४॥
 भाषी पूजो सब मिलि याहि, बहु मिलि पूजन लागे ताहि ।
 सुरही गाय पूंछ के बाल, तिनकी पीछी रची विसाल ॥५४५॥
 पूजा पाठ नए बरावाये, आंगे पीछे दर्व्य चढाए ।
 मुनि-तिय कौ दीक्ष्या दे भाषी, देसवृत करिके अभिलाषी ॥५४६॥
 चर्या वीर करो^१ सहू कोय, असे वैहकाये बहु लोय ।
 प्राछत^२ कहे और के और, इन दे आदि कुबुधि कै जोर ॥५४७॥
 करि कितेक वातें विपरीति, मूरिष मत आने करि प्रीति ।
 असे नदिसघ मै चाहो, काष्ट सघ उपज्यो विधि याही ॥५४८॥
 जब वाकौ गुर हौ मुनि महा, आय कही यह कीन्हो कहा^१ ।
 तव वन^२ कितियक मेटी चाल, कितियक चली जात हैं हाल ॥५४९॥

दोहा : तवही तं कहने लगे, मूलसघ तौ वाहि ।
 कहै नवीन प्रवीन जन, सघ कासटा^१ याहि ॥५५०॥

अथ निपिच्छ-संघ-उतपति-वर्नन

दोहा संवत नौसें थ्याएवै, सघ निपिच्छ उठान ।
 मुथरा नगरी में हुबो, सो विधि सुनहु सुजान ॥५५१॥

चौपई : मुनि एक रांमसेन वरनयो, समकित प्रकृति मिथ्याती भयो ।
 गुरु अर प्रतिमां जिन-वर तरणी, तिन में विंगि निकासी घरणी ॥५५२॥
 यह प्रतिमां मेरी है भाई^१, सो ही पूजोगो मन लाई ।
 यह गुर मेरो ताहका मानो, और मुनिनु कौ नाहि पिछानो ॥५५३॥

५४७ : १ करहु । २ प्राछित ।

५४९ : १ A missing । २ उन ।

५५० : १ काष्ट ।

५५३ : १ मई ।

सोरठा : श्रैसैं वात कितेक, कहि कहि मांथुर श्रावकनि ।
पकराई अति टेक, संघ निपछ परगट कियो ॥५५४॥
॥ इती संघ उत्पति 'संपूर्ण'¹ ॥

सोरठा : कुंदकुंद मुनिराज, श्रीमंदिर² जिनके वचन ।
मुनि हुव धर्म-जिहाज, अधिक समोधे मुनिनु कौं ॥५५५॥
चलते बहुत कुमार्ग, जो ए मुनि न समोधते ।
तव ही तैं सुभ मार्ग, गहि केते लागे चलन ॥५५६॥

अथ कुंदकुंदाचार्य-वर्नन

दोहा : संवत गुणचासा तरणै, कुंदकुंद मुनिराय ।
भये भटारक अवनि पै, तिनकी है अमनाय ॥५५७॥
इनके कारण पाय कै, नाम भये जिम पांच ।
सुने सु अव विधिवत कहे, भविजन मांनौ¹ सांच ॥५५८॥
पद्मनंदि मुनिवर हुतौ, पैहलै¹ तौ निज नांम ।
मुनिस्वर² के परसंग तैं, लहे नांम अभिराम ॥५५९॥
देव मिल्यौ यक आयकै, करी वीनती येहु ।
कहि ऐसो अवहं करूं, आग्या मोकौं देहु ॥५६०॥
तव¹ मुनिवर श्रैसैं कही, विदिह क्षेत्र ले जाय ।
श्रीमंदिर² स्वांमी तरणौं, दरसण मोहि कराय ॥५६१॥
तव स्वरधारि विमांन मुनि, चालयो मद्धि अकास ।
राह मांहि पीछी गिरी, ठीक पड़्यो नहि तास ॥५६२॥
मुनि बोले पीछी विनां, हम नहि मग चालंत ।
देव विचारी सो करूं, जिहि विधि चाले संत ॥५६३॥
गृधपच्छिछ¹ के परन² की, पीछी दई वनाय ।
गृधपछाचारिज यहै, तव तैं नांम कहाय ॥५६४॥

५५५- १ 'संपूर्ण' not in A । २ सीमंधर ।

५५८ : १ माने ।

५५९ : १ पहलै । २ फुनि सुर ।

५६१ : १ जब । २ सीमंधर ।

५६४ : १ गृध । २ परनि ।

स्वरमुनि गये विदेह में, दरसण किय जिनराय ।
 ऊंची सब ही की लषी, धनुष पांच सँ काय ॥५६५॥
 चक्रवर्त्ति आयो तहां, दरस करण जगदीस ।
 लषि वन मुनि कौ हाथ में, लए उठाय महीस ॥५६६॥
 भाषी यह को जीव है, कमडल पीछी धार ।
 जिन भाषी मुनि है यहै, भरथषड कौ सार ॥५६७॥
 तव चक्रोयन कौ धरचौ, एलाचारिज नांम ।
 फुनि आये निज क्षेत्र में, करि मनवद्धित कांम ॥५६८॥

सोरठा : कचहू विनां प्रभात, सामायक लागे करन ।
 समयै हुतौं न भ्रात, ताते वांकी^१ ग्रीव हुव ॥५६९॥
 तव तै नांम कहात, वक्रग्रीव आचार्य यह ।
 फुनि सुनिऐं यह वात, कुदकुंद मुनि जिम भये ॥५७०॥

अरिल कचहू वाद करत हे आंन^१-मतीन तै,
 कमडल भरचौं लष्यौ जल बुष्ण^२ नवीन तै ।
 वादी जलकौं मंत्रनि तै मदिरा करी,
 पूछी या कमडल मै मद तुम क्यौं भरी ॥५७१॥
 तव मुनिवर चक्रेश्वरि^१ कौ सुमरन कियो,
 देवि कुंद पुसपनि तै कमडल भरि दियो ।
 तव तै लागे कहन मुनी कुदकुद है,
 महिमां तिनकी जग में अधिक अमंद है ॥५७२॥
 आमनाय इनकी मत में असें भई,
 सुनी वात कहियतु है मति जानहु नई ।
 काहू समये संघ चलयौ गिरनारि कौं,
 कुदकुंदमुनि वहरि स्वेतपट लारकौ ॥५७३॥
 साथि दुहं मत के ही पच भये घनं,
 पहुचे गिर तरि जाय सबै असें भनं ।

५६९ : १ A धोकी ।

५७१ . १ अन्य । २ उष्ण ।

५७२ . १ चक्रेश्वरी ।

पहलै दरसन करन तनों भगरो परचौ,
 आपस मांभिदुहुंन ही कै अति रिस भरचौ ॥५७४॥
 वैतौ कहै हमारो ही मत आदि है,
 दूजे कहै अनादी हम वै^१ वादि हैं ।
 तव अकास तै भई देववांनी यही,
 भगरत काहे आदि दिगंबर है सही ॥५७५॥
 पहिलै^१ वंदन करी नेम जिनचंद की,
 जवतै आंमनाय ठैहरी मुनि कुंद की ।
 तवतै रचे कितेक ग्रंथ भवि तारनै,
 विसंधीन कौ मत षंडन कै कारनै ॥५७६॥

दोहा : इनहीं की अमनाय मैं, भये और मुनिराय ।
 नांमी तिनकी अलय-सी, कीरति कहौ वनाय ॥५७७॥

छंद मोतीदांम : धरा ध्रमचद^१ वडौ विडदाल ।
 थप्पौ पट वारह-सै-अठताल ॥
 तिके रणथंभ प्रतिष्टहि काजि ।
 बुलाय लये मुनि धर्म-जिहाज ॥५७८॥
 हुते गुर दक्षिण देस विसाल ।
 पुन्या घरमें सुष सी गुनपाल ॥
 दयो तिनु कागद आवन काज ।
 सिताव पधारहु हे मुनिराज ॥५७९॥
 महरत वांचि दियो यह जाव ।
 गिरां मति ढील चलैव सिताव ॥
 हुवो रवि अस्त भई जव राति ।
 गये रणथंभ मुनी परभाति ॥५८०॥
 मिले तँह राव हमीर निरिद^१ ।
 मही घनि घनि हुवो सु मुनिद ॥

५७५ . १ वह ।

५७६ . १ पहलें ।

५७८ . १ A ध्रमचद ।

५८१ : १ नरिद ।

भये बहु पर्म जे जति रावै ।

भयो सु भलो जस पुन्य प्रभाव ॥५८१॥

पुनः अन्योक्त^१ कुदकुद अमनाय मैं, भट्टारक जिणचद ।

दोहा : कछुपक तिनहू कौ सुजस, सुनिऐ भवि गुण वृंद ॥५८२॥

चौपई . यनपं^१ सत्र महाजन आय, गढ चीतोड^२ सु गये लिवाय ।

जहा धर्म घर फुनि बुधिवंत, सांगो राणों राज करत ॥५८३॥

तहा चौधरी हौ जिणदास, सांगो तेजो द्वै सुत जास ।

साह गोत फुनि वौह^१ धनवान, तिन कौ राषत हे सव मांन ॥५८४॥

सागै इक दिन विनती करी, करहुँ प्रतिष्ठा मुनि गुन-भरी ।

मुनि आग्या साफिक धन लाय, सव सामिची^१ दई मगाय ॥५८५॥

तव अति हरष मांनि मुनिराज, करने लगे प्रतिष्ठा काज ।

दिवस कितेक करत जब भये, मुनि तौ तन तजि स्वर्गनि गये ॥५८६॥

तिनकै सिध्य पाट कं जोग्य, हुतो न कोई महा मनोग्य ।

आयो हुतो प्रतिष्ठा जानि, इक सुरजन पांड्यो^१ गुनषांनि ॥५८७॥

ताकं सगि तिया हू हुती, गुन लावन्य^१ करि अति सोभती ।

तिनतैं सवै महाजन आय, विनती करी होहु मुनिराय ॥५८८॥

दोहा : ईह स्वरजन आवक तनै, हुती देवि कौ इष्ट ।

तातैं याकौ मांनते, पंडितजन हू सिष्ट ॥५८९॥

चौपई : सव मिलि ताहि भटारक करचौ, प्रभाचंद्र नाम यह घरचौ ।

अघ-तम-हरन उर्यो मनु सूर, बढ्यो प्रताप सवै भरपूर ॥५९०॥

तिया हुती तिह अजिकाकरी, 'करी प्रतिष्ठा तिनु गुन भरी'^१ ।

प्रभाचंद्र मुनि कहीं प्रकार, काहू दिसि कौ कियो विहार ॥५९१॥

छंद पद्धती : दिल्ली के पति पेरोजसाहि,

चांदा गूजर परघांन ताहि ।

५८२ १ अन्योक्ति ।

५८३ १ इनपै । २ चीतोड ।

५८४ १ बहु ।

५८५ १ सामिची ।

५८७ १ सुरजन पांडे ।

५८८ १ A लावनि ।

५९१ १ 'सोमित धर्म ध्यान गुन भरी' ।

दोऊ भइया पापड़ीवाल,
 तिनकै चित इक उपजी रसाल ॥५६२॥
 कीजे इक^१ सुभ कारिज जु कोय,
 दे आदि प्रतिष्ठा सुजस होय ।
 यह करि विचार^२ इक नर बुलाय,
 मुहुरत^३ इक सुद्ध भलौ कढाय ॥५६३॥
 भट्टारक श्रीमत प्रभाचंद्र,
 पठयो वसीठ तिन पे अमंद ।
 मुनि पासि जाय विनती करीस,
 चलि करहु प्रतिष्ठा हे मुनीस ॥५६४॥
 दिनकौ वताय दीन्हौ प्रमांण,
 सबही सुनि लीनी मुनि सुजांण ।
 दिन बीते वहु फुनि रहचौ एक,
 मुनि तै नर विनति करी प्रतेक ॥५६५॥
 मुनिराज अत्रे मुहि सीष देहु,
 दिन रहचौ ऐक नांही संदेहु ।
 कव चलि पहुचै वह ठाम हानं,
 तातै दीजे मुहि सीष दानं ॥५६६॥
 मुनि कही अहो तर रहहु सोय,
 देषहु परभाति सु कहां होय ।
 सोवत नर जव वह वढचौ प्रात,
 लषि दिल्ली अचिरज भयो गात ॥५६७॥
 मुनि कही जाहु दिल्ली मभार,
 साम्हे प्रघानं ल्यावे अवार ।
 नर आयहुं हूं भायन निकट,
 सब कही भयो अचिरज प्रगट ॥५६८॥
 गज हय रथ^१ फुनि^२ सुषपाल साजि,
 सब आये साम्हे लैन काजि ।

५६३ : १ यक । २ उपाय । ३ महरत ।

५६६ १ फुनि । २ रथ ।

वाजे वजाय नौवति निसांन,
 विधि भली मिले मुनि सौं सुजांन ॥५९९॥
 मुनि नगन पयादे चलन लाग,
 सव करी अरज मिलि हे सभाग ।
 चढि लेहु^१ पालिकी मुनि महांन,
 यामें हमरो अति वढै मांन ॥६००॥
 कहि मुनि हठतै चढि अहो साहु,
 या विधि कौ तुम कीज्यो निवाहु ।
 चढि चले पालिकी^१ साथि सर्व,
 जेनी फुनि^२ पुरजन त्यागि गर्व ॥६०१॥
 आवत पुर में मनिघरि विषाद,
 राघो चेतन अति किय ववाद ।
 पालिकी वंद करि दी लवार,
 दोन्ही चलाय मुनि विन कहार ॥६०२॥
 इन आदि वाद कीन्हे अनेक,
 मुनि जीति सर्व राषी सु टेक ।
 इक दिनि राघो चेतन सु चाहि,
 नर पठ्यो वृभन मुनिनु पाहि ॥६०३॥
 मावस दिनि मुनि तिह ठान देषि,
 सिष्यनु तै वृभी तिथि विसेषि ।
 सिष्यनु मिलि पूरझया कहीस,
 यह अरज दिलीपति पै दईस ॥६०४॥
 है आजु अमावस अहो साहि,
 वुनु पून्यो भूठी कही काहि ।
 पतिसाहि षिनाई^१ वृभ्रि तिथिय^१,
 मुनि भाषी पून्यो आजि सत्ति ॥६०५॥

६०० १ A चढ़ि वेहु ।

६०१ : १ पालिकी । २ फिरि ।

६०५ १ तित्थि ।

†A popular Jharasahi word—To call for—e.g. "दीदणी ने पीर खिनाई" ।

देवी पद्मावति^१ कौं अराधि,
 विनती करि संध्या समै साधि ।
 दीन्हौं उगाय नभ मांभि चंद,
 प्रगटचौ पुर मै जस अति अमंद ॥६०६॥
 वा दिनु मिलि भाषी अहो साहि,
 द्वादस कोसनि परकास याहि ।
 तव सांड^१ दौड़ाये^२ अनेक,
 सुनि मुनि दिय वांधि सु जाल ऐक ॥६०७॥
 वे दौड़े कोस वहाँत राति,
 वारह ही मै ऊग्यौ प्रभाति ।
 या विधि लषि साहि मुनिदं पासि,
 आये नमि कीन्ही अरज दासि ॥६०८॥
 यह कारण अव कहिये मुनीस,
 मुनि कही वाद जानहु महीस ।
 ताहू समये वादीनु आय,
 मंत्रनि तँ कमडल मद भराय ॥६०९॥
 दै कही अहो पतिसाहि ऐहु,
 कमडल मद भरचौ विना संदेहु ।
 मुनि लषि वामें किय पुष्प आनि,
 दीन्हौ उघाड़ि कमडल महानि ॥६१०॥
 अति प्रस्न^१ भयो पेरोजसाहि,
 मुषतें मुनि धनि-धनि कही चाहि ।
 यह कथा सुनी सब राजलोक,
 कीन्हौं निदान सब ही सु थोक ॥६११॥ -
 दरसन विनि भोजन हम करै न,
 या विधि भाषे वेगमनु वैन ।

६०६ : १ पद्मावति ।

६०७ : १ सांडे ।

तव साहि बुलाये त्रै प्रधान,
 भाषी ले आहु मुनी महान ॥६१२॥
 दरसन वेगम जब करे आप,
 तव ही बुनकौ मिटिहै^१ अताप ।
 मिलि भाषी मुनि तैं सबनि साह,
 तुम दरस वेगमनि कै सु चाह ॥६१३॥
 तार्तै हमरी विनती सु ऐहु,
 करि कै लँगोट दरसन सु देहु ।
 मुनि कही सुनौ तुम सकल साह,
 चलिजै यह जग मांझि । राह ॥६१४॥
 साहन मिलि सब सौगँद करीस,
 जुत वख मानिहैं हम मुनीस ।
 तव तैं यह राह चली विसैस,
 कछु बल वीरज प्राक्रम घटेस ॥६१५॥

छप्पै : दिल्ली के पतिसाहि भये, पेरोजसाहि जब ।
 चादौसाह^१ प्रधान भटारक प्रभाचंद्र तव ॥
 आए दिल्ली मांझि वाद जीते विद्यावर^२ ।
 साहि रीझि कै कही करे दरसन अंतहपुर ॥
 तिह समे लँगोट लिवाय फुनि चांदे विनती उच्चरी ।
 मानि हैं जती जुत वख हम सब, आवग सौगद करी ॥६१६॥

अरिल : याही गछमें भटारक जब बहु भये,
 वरष कितेक वितीते गछ निकसे नये ।
 तिनमें चलन बचन कौ भेद न जानियौ,
 निकसन क्री विधि लषी लिषी सो मानियौ ॥६१७॥
 संवत तेरह सैं पिचिहतरचौ जानिवै,
 भये भटारक प्रभाचंद्र गुनषानि वै ।

६१३ : १ मिटिहैं ।

६१६ : १ चादौसाह । २ A विद्यावर ।

तिनको आचारिजे ईक हौ गुजरात में,
 तहां सवै पंचनि मिलि ठांनी वात मै ॥६१८॥
 कीजे ऐक प्रतिष्ठा ती सुभ काज ह्वै,
 करन लगे विधिवत सव ताकौ साज वै ।
 भट्टारक बुलवाये सो पहुचे नहीं,
 तवै सवै पंचनि मिलि यह ठांनी सही ॥६१९॥
 सूरि मंत्र वाही आचारिज कौ दियो,
 पदमनंदि भट्टारक नाम सु यह^१ कियो ।
 ताकै पाटि सकलकीरति मुनिवर भये,
 तिन समोधि गुजरात देस अपनै किये ॥६२०॥

चौपई : ग्यानभूषण ताकौ सिषि^१ ऐक, दूजौ ग्यानकीर्ति सु विवेक ।
 दोऊ मिलि कं आधौ आधि, गछ मै लिये महाजन साधि ॥६२१॥
 सव गुजरात वहुनि मालवै, फुनि मेवाड़ माहि तिनुनवै ।
 दिगंवरी इनकी अमनाय, सो विधि अबलौ चाली जाय ॥६२२॥

दोहा : पंद्रह सै इकहैतरे, निकस्यौ गछ ग्वालेर ।
 सिष्य मुनी जिणचंद कौ, सिधकीर्ति गुरमेर ॥६२३॥

अथ मंडलाचार्य उतपति वर्नन

पंद्रहसै सु वहैतरे, गछ थाप्यौ नागोर ।
 रत्नकीर्ति यह नाम भनि, निज बलबुधि कौ जोर ॥६२४॥
 भट्टारक न केहावई, मंडलाचार्य कहाय ।
 तिनकी वा दिसि मांहि बहु, फैलि गई अमनाय ॥६२५॥
 फुनि सतरासै सत्तरे, थप्यौ पाट अजमेर^१ ।
 मंडलाचारिजे दूसरो, तामैं नांही फेर ॥६२६॥
 इनहीं गछ मै नीकस्यौ, नूतन तेरह पंथ ।
 सोलह-सै-तीयासिये, सो सव जग जानंत ॥६२७॥

६२० : १ यहै ।

६२१ : १ सिष्य ।

६२६ : १ अजमेर ।

ऐती विधि इनहू तजी, गुर नमिबो जग सार ।
 केसरि जिन-पद चरचिवो, पुष्प चढावन चारु ॥६२८॥
 भोजन तनक चढात नहि, सषरो^१ कहि त्यागंत ।
 दीपग की ठौहर सबै, रंगि कं गिरी घरंत ॥६२९॥
 न्हावन करत न चिव कौ, इन है आदि कितेक ।
 भली तजी षोटी गही, तेको कहै प्रतेक ॥६३०॥
 तिनकै गुर नाही कहं, जती न पडित कोय ।
 वही प्रतिष्ठा आदि की, प्रतिमा पूजत लोय ॥६३१॥
 वैही प्रतिमां अथ वै, तिन में वचन फिराय ।
 ठानि और की और ही, दीनों पंथ चलाय ॥६३२॥
 फिरि^२ एक निकस्यो पंथ अब, है सिरौज की वोर ।
 तारण पंडित नै कियो, आप अकलि कं जोर ॥६३३॥
 देस मालवा मद्धि तिन^३, नयो देहुरो ठानि ।
 प्रतिमा पधरावत नही, पुस्तग पूजत जांनि ॥६३४॥
 असं निकसे मत बहुत मन-मद धरि विपरीति ।
 यह पचम कलि काल की, फैलि गई जग रीति ॥६३५॥
 परि जे अब संसार में, जपत मत्र नौकार ।
 तिनतं वहसि न ठानि हैं, रे भवि सो मतसार ॥६३६॥

अथ परिपाटी भट्टारकानि की वर्नन

दोहा^१ : अब परिपाटी हू कछुक, सुनि जु भये जगचद ।
 महावीर प्रभु आदि मुनि, भट्टारक गुणवुंद ॥६३७॥

चौपई : श्री प्रभु वर्धमान जिनराय, ते तौ मुक्ति पहुचे जाय ।
 तिनकै पीछे केवल-न्यांन, वासठि वरष रह्यो परमान ॥६३८॥
 तामें गोतम गणधर भये, वहरि धरमाचारिज ठये ।
 तीजे जंबू वणिग-कुमार, ऐ तदभव पहुचे सिव द्वार ॥६३९॥

६३३ : १ कुनि ।

६३४ : १ तिनु ।

६३७ : A missing ।

^१संसार or saltish food as different from पक्वान्न ।

वर्ष^१ ऐक-सौ ग्यारह अंग, चौदह पूरव जुत सु अंभंग ।
 तिनमै विष्णु मुनी नदि मित्र, अपराजित मुनि भये पवित्र ॥६४०॥
 गोवरधन अर भद्र सुवाहु, ऐही पांच भये मुनिनाहु ।
 वर्ष ऐक-सौ असी^१ जानि, ताकै ऊपरि तीन वर्षाणि ॥६४१॥
 ग्यारह अंग दस पूरवधारी, भये मुनी ग्यारह अविकारी ।
 प्रथम विसाषाचारिज जानौं, वहुरि पोष्टिलाचारिज मानौ ॥६४२॥
 भये षित्रियाचारिज मुनी, ज्य फुनि नागसेनि मुनि गुनी ।
 सिद्धारथ ध्रितषेनि मुनिद, विजय बुद्धि मानं गुनवृंद ॥६४३॥
 गंगधर्म-सेनि मुनिराय, ऐ सव ग्यारह भये सुभाय ।
 वर्ष दोयसै ऊपरि वीस, ग्यारह अंग धरें मुनि ईस ॥६४४॥
 नक्षित्राचारिज जयपाल, पांडु वहुरि ध्रुवसेन विसाल ।
 कंसाचारिज हैं गुनषांनि, ए पांचौ ही जग सुषदानि ॥६४५॥
 वर्ष एक सौ वहुरि अठारा, एक अंग इनहं नै धारा ।
 सुभद्र यसोभद्र मुनिराज, भद्रवाहु जग के सिरताज ॥६४६॥
 लोहाचारिज लौ अंग जानें, छसै-तियासी वर्ष वर्षाणें ।
 वहुरि अंग जव विच्छति जानी, तव उपजे मुनिवर श्रुत-ग्यानी ॥६४७॥

अथ पट्टावली वर्नन

दोहा : दिग्गवर पट्टावली, अव सव मुनि हित ठानि ।
 भद्रवाहु यक अंगधर, तिनंही तै लै जानि ॥६४८॥

चौपई श्री गुरु भद्रवाहु मुनि भयो, संवत च्यारि तरण पट लयो ।
 तिनकै पट्टि भये गुनषांनि, संवत छव्वीसा कै अंनि ॥६४९॥
 गुप्तगुप्त आचारिज एक, नाम तीन तिन लहे प्रतेक ।
 दुतिय नाम अहंदवलि लह्यौ, त्रतिय विसाषाचारिज कह्यौ ॥६५०॥
 तिनकै पट्टि^१ भटारक भये, जहां-जहां जे-जे निरमये ।
 माघनदि छव्वीसै^२ साल, भये वहुरि जिणचंद विसाल ॥६५१॥

६४० . १ वरष ।

६४१ . १ अस्सी ।

६५१ : १ पाटि । २ छत्रीसै ।

कवित्त : गुणचासै भये कुंदकुंद पुनि उमा-स्वामि,
 लोहाचार्य जसकीर्त्ति यसोनंदि^१ जये हैं ।
 देवनदि पूज्यपाद गुणनदि वजूनदि,
 है कुमारनदि लोकचंद जग छये हैं ॥
 प्रभाचंद्र नेमिचंद्र भांनुनंदि हरिनदि,
 वसुनदि वीरनदि तिन्हें हम नये हैं ।
 रतनकीरति मांशिनंदि मेघचद्र फुनि,
 सातिकीर्त्ति मेरकीर्त्ति^२ ए छवीस भये हैं ॥६५२॥

दोहा : भदिलापुर दक्षिण दिसा, पट्ट भये छवीस ।
 वहुरि सुनहु^१ जे जे भये, जिहठां मुनि-गन ईस ॥६५३॥
 छसै-तियासी साल त्त, पट बैठे मुनिराज ।
 भट्टारक-पद पाय करि, भये सुधर्म जिहाज ॥६५४॥

कवित्त महीकीर्त्ति विष्णुनंदि भूषण औ सिरिचद,
 नदिकीर्त्ति फुनि देस भूषण से मानिए ।
 अनतकीरति धर्मनदि वीरचद भये,
 रामचद्र रामकीर्त्ति अभैचद जानिए ॥
 नरचंद्र नागचद्र वहुरि नयणनदि,
 हरिचद्र महीचद्र माघचद्र दानिए ।
 ए अठारा पट^१ भये नगरी उजेनि मांहि,
 नमत वषतरांम तिन्हें उर आंनिए ॥६५५॥

चौपई संवत इक सहश्र तेईस, लक्ष्मी ससि गुणनदि मुनीस ।
 गुणचद लोकचद मुनि^१ वए, - ऐ पट च्यारि चंदेरी भये ॥६५६॥
 सवत ऐक हजार गुण्यासी, कं श्रुतकीरति हैं गुणरासी ।
 भावचद्र महिचद्र वषानौ, ऐ पट तीन भेलसै जानौ ॥६५७॥

६५२ १ यसोनव । २ मेरकीर्त्ति ।

६५३ १ सुनौ ।

६५५ १ पाट ।

६५६ १ मुनु ।

दोहा . ग्यारह सै चालीस कै, साल^१ भये अभिराम ।
कुडलपुर मै ऐक पट, माघचंद्र तसु नांम ॥६५८॥
ग्यारह सै चालीस परि, च्यारि साल लै जानि ।
तव तै भये मुनीस जे, तिनकाँ सुनि दै काँनि ॥६५९॥

कवित्त : वृषभनंदि सिवनंदि विश्वचंद्र सिंहनंदि,
भावनंदि देवनदि महा मुनिराज है ।
विद्याचंद्र सूरचंद्र माघनदि ग्यानकीर्त्ति
गंगकीर्त्ति सिंघकीर्त्ति धर्म [के] जिहाज हैं ॥
हाडोती के देस मांहि वार नगरी है तामै,
वारापट भये ये सकल सिरताज है ।
कर जोरि तिनकाँ नमत है वषतरांम,
गुरनि कौ मेरी भव-भव तनी लाज है ॥६६०॥
ग्यारहसै नव-निवै तणै सालि हेमकीर्त्ति,
सुन्दरकीरति नेमिचंद्र अभिरांम है ।
नाभिकीर्त्ति वहरि नरिंद्रकीर्त्ति सिरोचंद्र,
पद्मनंदि वर्द्धमान भले गुन धांम हैं ॥
अकलकचंद्र श्री ललितकीर्त्ति केसोचंद्र,
चारु अभै वसंतकीरति तीनों नांम हैं ।
दुरग चीतोड^१ मांहि पट भए चौदह ऐ,
तिनकाँ वषतरांम करत प्रनांम है ॥६६१॥

छंद : वारह सै-छयासठे साल पट प्रध्याति कीरति पाओ ।
सांतिकीर्त्ति फुनि धर्मचंद्र मुनि रत्नकीर्त्ति जस छायो ॥
प्रभाचंद्र लौ भये पांच पट ए अजमेरि वताये ।
पद्मनदि सुभचंद्र दोय मुनि दिल्ली में पट पाये ॥६६२॥

दोहा पट्ट एक ग्वालेर मैं, भए मुनी जिणचंद्र ।
पद्रह-सै-सतवोत्तरै, मनहु उये निसि चंद्र ॥६६३॥

६५८ १ सालि ।

६६१ . १ चीतोड ।

पद्मह-सै-इकहैतरे, प्रभाचंद्र यह नाप ।
वहुरि भये चीतोड^१ में, सकल गुननि के धाम ॥६६४॥

अरिल : पद्मह-सै-इकअस्सी धर्म सु चद है,
ललितकीर्त्ति फुनि चद्रकीर्त्ति सु अमद है ।
भट्टारक देवेद्रकीर्त्ति मुनि च्यारि ऐ,
भये चाटसू में भविजन उर धारिऐ ॥६६५॥

सोरठा : नरेद्रकीरति नाम, पट इक सागानेरि में ।
भये महागुन-धाम, सोलह सै इक्चारणवें ॥६६६॥

अरिल : सत्रह-सै-चाईस तराँ जो साल है,
सुरेद्रकीरति भये सु तिन कै पटि लहै^१ ।
जगतकीर्त्ति देवेद्रकीर्त्ति गुनलीन है,
अवावति में भये भट्टारक तीन है ॥६६७॥

दोहा : इक पट दिल्ली फुनि हुवो, महेद्रकीरति नाम ।
सत्रह-सै परि-वाणवें, लह्यौ पाट गुनधाम(अभिराम^१) ॥६६८॥

चौपई • पट्ट दोय पाये मुनिराय, नगर सवाइ जैपुर आय ।
इक खेमेद्रकीर्त्ति गुनपाल, अठारह-सै-पद्मह^१ कै साल ॥६६९॥
तिनकै पटि राजें बुधिवांन, सुरेद्रकीरति तम हर भान ।
साल अठारह-सै-तेईस, भये भट्टारक महा मुनीस ॥६७०॥

दोहा : भद्रवाहु मुनि आदि है^१, भट्टारक गुन षानि ।
सुरेद्रकीरति लौं भये, पट अठ्यारणवें जानि ॥६७१॥
असै यह पट्टावली, ग्रथनि कै अनुसारि ।
कछु पोयिनु कौं देखि करि^१, वरनन कियो विचारि ॥६७२॥

६६४ १ चीतोड ।

६६७ : १ पटि हा लहै ।

६६८ १ अभिराम missing ।

६६९ १ ठारह-सै-पद्मह ।

६७१ १ वें ।

६७२ . १ कै ।

गादि श्री महावीर की, बैठत आये संत ।
तिनकों वन^१ सम मानिकै, पूजहू सकल महत ॥६७३॥
इति पट्टावली पूर्णं ॥ अथ आगम कथन वर्नन^१ ॥

अरिल . फुनि यह आगम कथ्यों सु भवि सुनियों सबै,
सवत अठ्ठारहसै वीतंगे जवै^२ ।
तापै वरष कितेक गये इम भास ही,
दक्षिण दिसि मै वंध्याचल में^३ गिर पास ही ॥६७४॥

दोहा : पुस्कल नगर विषैसु ह्वै, वीरचंद मुनिनाथ ।
गळ पडिकमणूं अर क्रिया, न्यारी करिहै गाय ॥६७५॥
भील संघ उतपति करै, नये ठानि वहु वाक्य ।
ग्याना^१वरनी कर्म कौ, लहि करि कै परिपाक^२ ॥६७६॥
वहु विधि करि जिन मत जु है, अर तिह तरणों^३ निपात ।
करिसी फुनि मुनि कोन ह्वै, जो मेटै मिथ्यात ॥६७७॥
कहु जिन मग विधि और ही, चलयीं जाय इम धर्म ।
ज्यों त्यों सुख दुष भुंजि कौ, करि करि कै वहु कर्म ॥६७८॥
आवै पंचम काल कौ, अंत जवै इक कोय ।
मूल गुणनि कौ धारि कै, वीरांगज मुनि होय ॥६७९॥
अलप पढ्यौ है सासतर, तौह जैनि प्रकास ।
करिहै वहुरि मिथ्यात कौ, करिसी वहै विनास ॥६८०॥
भद्रवाहु कौ चरित लषि, वरन्यौ है या मांहि ।
भविजन लषि मोकों कछू, दोस दीजियो नांहि ॥६८१॥

अथ श्रावक की उतपति वर्नन

दोहा : अर उतपति श्रावकनु के, षांप गोत की जेम ।
भई सु पोथिनु देषि करि, वरनत है कवि तेम ॥६८२॥

६७३ : १ उन ।

६७४ : १ from इति to वर्नन not in A । २ सबै । ३ not in A ।

६७६ : १ ज्ञाना । २ परपाक ।

६७७ : १ तरण ।

६८२ : १ अथ उतपति श्रावक की वर्नन ।

श्रागें तो श्रावक सबै, ऐकमेक ही होत ।
 लगे चलन विपरीति तव, थरपे षांप रु गोत ॥६८३॥
 थपी वहेतरि षांप ऐ, गाम नगर कै नाम ।
 जैसे पोथिनु मै लपी, सो वरनी अभिराम ॥६८४॥

षांप वनन

चौपई : गोला पूरव गोला राडा, कहे लवेचू गोल सिघाडा ।
 षडेलवाल महाजन सोहे, जैसेवाल जग में श्रव जोहे ॥६८५॥
 ववेरवाल सु अग्ररवाला, सहिलवाल जिन धर्म सम्हाला ।
 सात षाप पुरवार कहाये, तिनके तुमकी नाम सुनावे ॥६८६॥
 अठसष्या फुनि है चौसष्या, सेहसरडा फुनि है दोसष्या ।
 सोरठिया अर गांगड जानों, पद्मावत्या^१ सप्तमा मानौ ॥६८७॥
 फुनि दूसर अर वरहासेणी, षंथड़वाल गहोई लेणी ।
 इकईसवा जु जाणि सचाणा, वहुरि अजोध्यापुरी वपाणा ॥६८८॥
 गोरावाड वहुरि कठनेरा, वीडलसानी मसरा हेरा ।
 धकडा गूनरवाली वाल, माणडा^२ सब मांहि विसाल ॥६८९॥
 वेरवडा फुनि पल्लीवाल, गंगरिक ए वतीस सम्हाल ।
 तीन षाप के हैं द्वै नाम, तेहू तू सुनि लै अभिराम ॥६९०॥
 सेहरिया निगमां गुजराती, मेवाडा रा-सूयचा-भाती^१ ।
 षरवा षंडावता हू वाजे, ऐ तीनों षटनांम विराजे ॥६९१॥
 नागद्रहा अर नरस्पयं घोड़ा, वयानशा फुनि है चीतोडा ।
 है हरधरा और सीदरा, कुलया श्रावक अरहू नरा ॥६९२॥
 दहवड़ राय कडावरण घोरा, चतुरथ श्रावक है अति भोरा ।
 पचम श्रावक है सुभकारी, ऐ अठतालीसों अ विकारी ॥६९३॥
 चचल बल गोरा गुणवान, करमणोत श्रीमाल सुजान ।
 फुनि ऐ श्रावक षांच कहावे, है चिडुकरा विवोरा भावे ॥६९४॥
 मद वेवावली गुरा जानों, कमटी आगे श्रावक आनों ।
 नुतया श्रावक सब मन भाये, तुला सिरी श्रीमाल कहाऐ ॥६९५॥

६८७ १ पदमावत्या ।

६९१ । १ मेवाडा रा या सूचा भाती ।

इक कचगार दुतिय ह्य गार, त्रतिय ब्राह्मण फुनि लौ गार ।
 द्रावड़ नल या पन सिषवाल, काकलवाड़ जैन सगवाल ॥६६६॥
 श्रवण पगाहुं मड़पित्रिया, वोसवाल श्रर बुद्धोलिया^१ ।
 ऐ सव पांप वहेतरि भई, वारह श्रौर सुनौ यन मई ॥६६७॥
 कंधड़ जनड़ा कोरड़वाल, षडहूता श्रर मेढतवाल^१ ।
 है श्रहिछत्र वहरि दोहला, हरसूरा सुड़ीड़हा भला ॥६६८॥
 गोतवंसी वल री गुल कहे, पीहकरवाल सु वारा भये ।
 षांप वहेतरि तौ वै कही, ऐ मिलि सव चौरासी भई ॥६६९॥
 पोथी पांच सात कौं देष^१, करि विचार यह कीनों लेष^२ ।
 यामँ भूथ्यौ चूकचौ होय, ताहि सुधारि लेहु भवि लोय ॥७००॥
 इनही में जो षंडेलवाल, तिनमै निकसे गोत रसाल ।
 चौरासी है तिनके नांम, सो विधिवत कहियत सुषघांम ॥७०१॥

अथ षंडेलवाल उत्पत्ति वर्नन

चौपई : श्री प्रभु महावीर जिनराय, तिनहि नमौ भवि मन वच काय ।
 पीछे भये कितेक मुनिद, तिनमें यसोभद्र गुणविंद ॥७०२॥
 एक अंग धारक यह मुनी, यनकहु वातें अैसे सुनी ।
 नगर षंडेला यक श्रभिराम, रूपति तसु षंडेल गिर नांम ॥७०३॥
 वंस सोम कुल है चौहांन, सोभित तासु तेज जिम^१ भांन ।
 तहां मुनीधर गये कितेक, विप्रनु तें किय वाद अनेक ॥७०४॥
 जीते वाद रहे मुनि जहां, विप्रनु कोष कियो तव तहां ।
 पुरमें मलवाई कौं रोग, उपज्यौं काहू पाप संजोग ॥७०५॥
 छोजन लगे बहुत नर नारि, प्रोहित विप्रनु तवें विचारि ।
 जग्य सथापौ जव नरमेद, तामें होमें मुनि पढि वेद ॥७०६॥
 तयतें विथा अधिक ऊपनी, मरन लगी पिरजा पुर तनी ।
 फुनि सव देस मांहि दिन नीति, प्रगटचौ रोग महा विपरीत ॥७०७॥

६६७ : १ पुट्टेलिया ।

६६८ : १ मेरुनवाल ।

७०० : १ देवि । २ सेवि ।

७०४ : १ जिमि ।

तव उपद्रव लषि पुर मांहि, नर नारी सवहीं निकसांहि ।
 नगरि नजीक गुढे करवाय, वसे तहां सव पुर के आय ॥७०८॥
 अंस होमे सुनि मुनिराय, यसोभद्र तव कियो उपाय ।
 सिष्य^१ जिनसेनि हुतौ मुनि साहु, ताकों कही षडेल जाहु ॥७०९॥
 थापो श्री जिन-धर्म प्रवीन, जैसें चलि आयो प्राचीन ।
 काहू भाति संक मति करो, प्रभु कौ नाम हिये मधि^१ धरौ ॥७१०॥
 तव जिनसेन^१ षडेल आय, आवक श्रेष्ठी लये बुलाय ।
 तिनकौ जुदौ वसायो गुढौ, सव कौ कही नाम जिन पढौ ॥७११॥
 देव्य अराधी चक्रेश्वरी, ताकों मुनि यह आग्या करी ।
 सव जैनिनु की रक्षा^१ करो, रोग व्याधि इनकौ सव हरो ॥७१२॥
 देवी मुनि की आग्या पाय, जैनिनु कौ दुष दयो मिटाय ।
 तव सुषी सव आवक भये, समाचार नृपहू पं गये ॥७१३॥
 सुनि आयो षडेल-गिर भूप, वदे मुनि के चरन अनूप ।
 विनती करी अहो मुनिराज, तुम हौ नर भव जलधि जिहाज ॥७१४॥
 कौन पाप पिरजा छीजंत, सो मोकों कहिए विरत्तत ।
 छीजत भये वरष दस दोय, काहू भाति साति नहि होय ॥७१५॥
 तव मुनि भाषी अहो महीस, जिनमत धारी महा मुनीस ।
 तप करते या नगर दिगारि, विप्रनु होमे जग्य मभारि ॥७१६॥
 घोर पाप उज्यौ पुर मांहि, तातं सव नर नारि छिजांहि ।
 यह विरतांत सुण्यो नृप सवं, दुषी भयो मन मैं अति तवं^१ ॥७१७॥
 विप्रनु तैं भूपति अनषांहि, क्रोध करन लागे मन मांहि ।
 तव मुनि कही अहो नर ईस, सोच फिकर मति करहु नरीस ॥७१८॥
 विप्र प्रोहितनु सांमिल होय, तुम तैं तौ यह राषी गोय ।
 कियो जग्य होमें मुनि धनं, तातं तुम्हें दोष नहि वनं ॥७१९॥
 तव नृप कही अहो रिषराय, दोष मिटै सौ कही उपाय ।
 औरनि तैं यह मिटै न पाप, तुमही मेटी जग सताय ॥७२०॥

७०९ : १ सिषि ।

७१० : १ मध्य ।

७११ : १ जिनसेनि ।

७१२ : १ A रक्षा ।

७१७ : १ जब ।

आचारिज बोले नृप अहो, श्री जिनधर्म मर्म तुम गहो ।
 और सब त्यागो मत जाल, तौ वचाव ह्वै है ततकाल ॥७२१॥
 भूपति हाथ जोरि सिर नाथ, सब कबूली मन वच काय ।
 तवतै चौकी दै ईश्वरी, व्याधि सब पुरजन को हरी ॥७२२॥
 पिरजा सुषी भई सब जानि, भूपति हरष अधिक मन मानि ।
 बोले तुमहि घन्य मुनि नाथ, जग बूड़त राष्यौ गहि हाथ ॥७२३॥
 अवजो आग्या ह्वै सो करै, तुम प्रसाद हम भव दधि तरै ।
 मुनि भाषी करिऐ नृप सार, श्रावग के वृत अगीकार ॥७२४॥
 जगत माहि हैं जन बहु रूप, तिनमै होहु महाजन भूप ।
 और ग्राम हूं तै नर-नारि, आऐ तिनहैं वुलाय विचारि ॥७२५॥
 सबकी षांप सु षंडेलवाल, ठैहराई समेति भूपाल ।
 अंस मुनि इष्ट कै जोरि, सबको श्रावग किये वहोरि ॥७२६॥

दोहा :
 जे आऐ जिह गाम तै, ताही नाम सुगोत ।
 ठैहराऐ फुनि वंस कुल, पूरव किए उदोत ॥७२७॥
 नाम वस के जो हुते, आगे ही प्राचीन ।
 सोम-हरी इष्वाक कुरु, फुनि सो रई प्रवीन ॥७२८॥
 तामें सोम सु वंस मै, गोत तीन चालीस ।
 भये रहे कुल आदिके, देवी नई थपीस ॥७२९॥
 प्रथमहि भाई भूप जुत, चौदह जानि सुबुद्ध ।
 ते जिनसेनि समोधि कं, कीन्हे श्रावग सुद्ध ॥७३०॥
 वस सोम चौहान कुल, गोत गांम कै नाम ।
 जहां जहा जो वसत हौ, सो दीन्हौ अभिराम ॥७३१॥
 कुलदेवो चक्रेश्वरी, तिनकी दई सथापि ।
 सो पूरै मन कामना, विघन न होय कदापि ॥७३२॥

छंद छप्पै^१ : गोतसाह किय भूप षडेना के जो नायक ।
 गांव भावसा तरौ भावसा गोत सु लायक ॥
 जल वाणी भूलणां पापड़ीवाल वताये ।
 दरडौध्या अरडकचा गांम कै नाम कहाये ॥

पीतल्या पहाड्या साभरद्या नरपति हेला पांडिया ।
इम राजभद्र अरु छावडा चौदह गोत सुमाडिया ॥७३३॥

सौरठा : तिनमें वारह मांहि, वंसदेव्य कुल ऐक ही ।
भेद भाव कछु नाहि, कहि आयो सो जानियौं ॥७३४॥

अरिल : गोत दोय की वात भई अैसें नई,
देव्य सावडा तरौ वहरि औरिल भई ।
कुल देवी संभराय साभरद्या पूजही ।
वरष कितेक वदी तें इम पूजं सही ॥७३५॥

दोहा : या विधि तीयालीस में, चौदह कुल चौहांन ।
भये सु भाई भूप जुत, फुनि यह सुनी सुजान ॥७३६॥
थापे हैं जिनसेनि ती, चौदह ही कुल गोत ।
वहरि और सुनिवर नु मिलि, थापे गोत सुपोत ॥७७॥
षट कुल पामेचा किये, देवी औरिल मानि ।
रारा रावत राउंका, मोघद्या मौंठ्या जानि ॥७३८॥
गोत विलाला दोय विधि, इक कहि आयो सोय ।
दूजे सोनिल कौन में, कुल नदिचा होय ॥७३९॥

सौरठा कुल जादव में पांच, गोत नीकसे हैं ललित ।
तामें मानहुं सांच, डेहचल पूजं वेद तौं ॥७४०॥
वनमाला फुनि वव, भडसाली अरु नरपत्या ।
करत न तनक विलव, पूजत देवी रोहणी ॥७४१॥

अरिल : कुल मोहिल में गोत च्यारि ही जानिकैं^१,
टौंग्या पूजत देवी चावंड आनिकैं ।
वहरि वाकलीवाल कासिलीवाल हैं,
हलद्या पूजं देवी जीरिण विसाल हैं ॥७४२॥

दोहा : कुल गंहलौत^१ सुगोत त्रय, पूजत गरणपति चौथि ।
है विनाथवया विचला, वहरि पोदल्या कोथि ॥७४३॥

७४२ १ जानकैं ।

७४३ १ गंहलौत ।

अरिल : पंच जु कुल पडिहार गोत देवी सुनै,
 वेत्र मालिया दोसी चांवड काँ मनै ।
 पीगोल्या कडवा गिर नांदिल मानिऐँ,
 बड़साली पांड्या सरसलि के जानिऐँ ॥७४४॥
 कुलहु जील तूवर फुनि सोढा सांभला,
 इन च्यारचौँ कुल मांहि गोत कहिए भला ।
 दगड़ा अर पाटणी गिनोड़्या सांषुर[ए]या,
 याही क्रम तै देव्य नांम लषिए भएया ॥७४५॥
 सरसलि आंमणि सकरणि अरु सभराय कं,
 पूजन जात सु च्याह्यौँ गोत सुभाय कै ।
 राजहंस अहंकारचा गोत सु दोष है,
 सरसलि सरस्वतिन मै सुकुल नहि होय है ॥७४६॥

दोहा : कुल इन दोन्यौँ गोत कै, लिष्यौ न देख्यौ कोय ।
 तातै वरनन नहि कयौ, दोस ना दीज्यौ लोय ॥७४७॥
 सोमवंस के वरनिऐँ, गोत तीन चालीस ।
 अरु कुरुवंसो जे भये, तिनकी सुनहु कहीस ॥७४८॥

चौपई : कुर-वंस में अठारा गोत, तिनके कुल फुनि देवी होत ।
 नांम गांम कै गोत प्रमांन, सो सुनि लीजे सकल सुजान ॥७४९॥
 कुल नादेचा गोत सु तीन, देवी सोनिल पूजहि दीन ।
 छाहड़ कोकराज जुग-राज, ऐ तीनों तिनमै अति लाज ॥७५०॥
 कुल मोहिल ह्वै गोत विसाल, सिरि मूलराज लटिवाल ।
 इक कुन के जानौँ गँहलोत^१, तिनकौ वीरषडिया गोत ॥७५१॥
 ऐ तीनों श्री देव्य पुजाहि, फुनि कुलदेवड़ानि ह्वै माहि ।
 कुल भाएयांरु निगोत्या जेह, देवी हेसां पूजत तेह ॥७५२॥

दोहा फुनि को कारण पाय कै, गोत निगोत्या जानि ।
 कुलदेवी चांवड की, तिनकै है अति मानि ॥७५३॥

चौपई : कुल चंदेल गोत द्वै सार, मूलसरचा फुनि चांदूवार ।
 देवी मातरिण पूजत गुरी, तामै भेद कहूं सो सुरी ॥७५४॥

चांडूवाड़ भेद द्वै मेल, इक कुखंडसी कुल चदेल ।
 इक सोभवस कुल चावडा, दोऊ सातरिण पूजें षडा ॥७५५॥
 तीन गोत कुल गौड उजेरा, गोधा सरवाड्या अजमेरा ।
 देवी नादरिण पूज कराही, फुनि गोधा जिन साति पुजांहीं ॥७५६॥

दोहा : देवी तजि जिन साति कौ, पूजन लागे जेम ।
 वीतें वरष कितेक सो, भवि सुणि कारण तेम ॥७५७॥
 नादरिण की मूरति हृति, रूपा तरणी मनोग्य ।
 ताहि भाजि सुवरण तरणी, करि पूजी-अति जोग्य ॥७५८॥
 जव नादरिण करि क्रोध कछु, कौन्हों तिनकों दोस ।
 तवतें पूजे साति जिन, हरचो देवी कौ रोस ॥७५९॥
 वारहसैं अठताल कैं, सालि भई यह रीति ।
 तवतें गोधा सांति जिन, पूजत हैं करि प्रीति ॥७६०॥

चौपई . तीन जानियों कुल गंहलोत, पूजें पद्मावति ऐ गोत ।
 पाटोधी चौधरी सु सार, सेठी जानि दोय परकार^१ ॥७६१॥
 इकतौ कहि आयो सु सहीजे, दुतिय वस इष्वाक कहीजे ।
 सेठी गोत लोह-सिल देवी, पूजत है इह भाति सुखेवी ॥७६२॥
 इक कुल कोटेचा सुणि-वारिण, कांन्हड देवी गोत सौगाणी^१ ।
 इक कुल ठीमर देवी लाहरिण, कालागोत न हाकैं वाहरिण ॥७६३॥
 कुरवसी ऐ गोत अठारा, अब इष्वाक वस में ग्यारा ।
 गोत भऐ कुल देव्य सुणीजे, भेदभाव तामें न करीजे ॥७६४॥
 है कुल मेरठि लुह-सिल पूजें, गोत लुहाड्या लावट गूजें ।
 त्रय कुल कूरम गोत कटारचा, औ गगवाल भांभरी भारचा ॥७६५॥
 ऐ तीनो पूजत जमवाय^१, इक कुल नादेचा सुभ पाय ।
 गोत नौपडा कहै अनुप, पूजत मस्ता देव्य स्वरूप ॥७६६॥
 कुल वड़गूजर गोत सु तीन, विरल्या अर वावसा कुलीन ।
 ए द्वै मानत देवी सिरी, नमें वौहरा सौ तिल सुरी ॥७६७॥

७६१ : १ प्रकार ।

७६३ : १ सौगाणी ।

७६६ : १ जमवाड़ ।

दुतिय वौहरा कुल गँहलोत, और सफल जानौ वह पोत ।
 कुल भाला सु गोत चरकनां, नांदिल पूजत है सुभ मनां ॥७६८॥
 ए सव ग्यारह गोत सुभये, वंस इप्वाक मांहि वरनये ।
 अरु सुनि कुल सो रई प्रसिद्ध, गोत नीसरे दस ता-मद्धि ॥७६९॥
 कुल सोलंषी आंमिणि देव्य, गोत आठ मै है अति सेव्य ।
 सोनी लौंहग्या फुनि सोहनी, भूँछ पांपल्या गदहचा भनी ॥७७०॥
 सृपत्या सहित भये हैं सात, वहरि पावड़चा है द्वै भांत^१ ।
 इक पांवड़चा नमै मोहनी, दुतिय नमै आंमिणि^२ कौ गुनी ॥७७१॥
 कुल सुनार द्वै आंमिणि नमै, वज्रहथा फुनि वज-गोत मै ।
 ए दस वंस सोरई कहे, द्वै हरि-वंस माभि हू गहे ॥७७२॥
 नरपोल्या^१ निरगंधा गोत, कुल है दहरचा और नहि होत ।
 देवी नांदवि^२ नमण करांहि, सुषी होत तव या जग मांहि ॥७७३॥
 ऐ सव भये गोत चौरासी, देवी यनकी सकल प्रकासी ।
 तव तै पूजन लगे दिहारी, सव श्रावगनि प्रतंग्या धारी ॥७७४॥

चौपई^१ : लिषी सुणी जैसी प्रति भासी, लषि विधिवत मति कीज्यौ हांसी ।

इन श्रावग कै आपस मांहि, सगपण है फुनि पांति जिमांही ॥७७५॥

दोहा

या विधि मुनि सवकौ हरची, रोग दोष दुष कष्ट ।

श्रावग ठेहराये^१ विमल, सवै महाजन सिष्ट ॥७७६॥

तव श्रावकनि करी अरज, अहो महा मुनिराय ।

क्रिया धर्म श्रावग तणौं, मग हम देहु वताय ॥७७७॥

बोले मुनि वृभी भले, सव सुनिए मन लाय ।

जिनमत कै अनुसारि सव, देहौं तुम्हें सुनाय ॥७७८॥

प्रथम कहौं किरिया कछू, जो सधि आवै सार ।

तामै कमी न कीजियो^१, करिके परम विचार ॥७७९॥

दोय घड़ी कै प्रात उठि, मन मै जपि नवकार ।

वहरि करौं^१ किरिया सकल, जिह प्रकार आचार ॥७८०॥

७७१ . १ भांति । २. आंमिणि ।

७७३ : १ नरपोल्या । २ नांदलि ।

७७५ : १ चौपई ।

७७६ : १ ठहराए ।

७७९ : १ कीजियो ।

७८० . १ कहौं ।

क्रिया वर्नन

निसि ऊंन्हों अथवा छएथो, जलतं पात्र भराय ।
 वहर^१ भूमि के फिरन कौ, प्रासुक भुव में जाय ॥७८१॥
 तामें श्रैसी^१ जायगा, बरजी चुनिऐं साहु ।
 वहर भूमि कौ भूलिहू, एती ठीर न जाहु ॥७८२॥

चौपई : जहा जु^१ कोई देषत जाणों, फुनि ह्वै^१ प्रेतनि^२ तराँ ठिकारों ।
 परवत मस्तगि अरु जल माहि, लषि कं कवहू फिरिये नांही ॥७८३॥
 फुनि वंवई देवल परहरिये, हलकी लोक माहि नहि फिरिऐ ।
 फूलनि के वृषिनु कं नीचं, डाभ वगन^१ की ठीहर वीचं ॥७८४॥
 हरी भूमि फुनि भूमि चिता की, गाय आदि पसु वैठक ताकी ।
 अगनि तराँ ह्वै^१ कहूँ^१ ठिकाणो, इन ठीहर मल मूत्र न ठारों ॥७८५॥
 तलाव तं दस हाथ परं ही, करं मूत्र यह वात वतं ही ।
 इक सत हाथ परं मल मोचं, नदी तं चौगुणों न सोचं ॥७८६॥
 जलत अगनिस्वर सूरिज चदा, होय मुनिस्वर ग्यान अमदा ।
 कवहू इनकों देषत जाई, मल फुनि मूत्र न मोची भाई ॥७८७॥
 वावें हाथि^१ सऊच करीजे, जल कौ पात्र दाहिने लीजे ।
 जौ लगि हाथनि घोवें नाहीं, तौ लगि वस्त्रनि नाहि छुवाहीं ॥७८८॥

दीहा : अथवा वाहरि फिरन के, वस्त्र जिते जो होय ।
 तिन्हें जुदे ही राषिए, छींवो करं न कोय ॥७८९॥
 नंदी और तलाव में, सीचौ लेहु न मित ।
 प्रथम निवाण मलीन ह्वै^१, अण छांणोर्यो जल हुत ॥७९०॥
 छारो जलतं घोइए, मांटी ले निज हाथ ।
 तामें श्रैसी होय सी, मांटी तजौ अकाथ ॥७९१॥

७८१ : १ बहरि ।

७८२ : १ एति ।

७८३ : १ ज । २ प्रेतन ।

७८४ : १ उगन ।

७८५ : १ कहीं ।

७८८ : १ हस्त ।

सोरठा : वृषि तले की होय, फुनि ह्वै नंदी कूप की ।
 ह्वै तलाव की कोय, ह्वै मल-मूत्र समीपि^१ की ॥७६२॥
 सो मांटी मति लेहु, धोवन कौं निज हाथ तुम ।
 हिंसा होत अछेहु^१, यातें वरजी है तुम्हें ॥७६३॥
 वांम हाथ वर तीन, प्रासुक मांटी तें धुपै ।
 फुनि मांटी जल लीन, दोऊ धोवें तीन वर ॥७६४॥

दोहा : दांतिण सूको कीजिये, जो सूको न मिलाय ।
 तौ पांचा परवी विनां, और कीजिये चात्र ॥७६५॥
 जो कदाचि दांतिण तराँ, मिलै नही संजोग ।
 तौ द्वादस कुरला करै, मुष सुध होय सनोग ॥७६६॥
 अरु सनांन के करण की, विधि भाषत हीं तोहि ।
 जीवजंत लषि दूरि करि, फुनि आसुक भुव जोहि ॥७६७॥
 प्रथम लगावो^१ तेल कौं, फुनि जल गरम मंगाय ।
 पहलें पग कटि धोय फुनि, मस्तगि जल नषवाय ॥७६८॥
 करै मूत्र धोवें करनि, मइथुन अंत^१ सनान ।
 फिरि मल मोचै तौ करै, अर्ध सनांन प्रमांन ॥७६९॥
 करि सनांन तें अंग सुचि, फिरि सामायक ठांनि ।
 नांम प्रभू कौं लेहु भवि, विरियांतनै निदांनि ॥८००॥
 चहुरि प्रभू की कीजिये, पूजा अष्ट प्रकारि ।
 धरि प्रतिमां ह्वै तौ घरां, कै देहुरा मभारि ॥८०१॥
 प्रभु कै सनमुषि^१ प्रथम ही, ठाढ़ो ह्वै कर जोरि^२ ।
 दरसन करि विनती करहु, विधिवत सीस निहोरि ॥८०२॥

‘विनती’^१

छप्पै : तुम दरसन तै देव सफल सो मनिष जनम-हुव ।
 तुम दरसन तै देव सकल अघ कष्ट टरि-गयव ॥

७६२ . १ समीप ।

७६३ : १ अछेव ।

७६८ : १ लगावै ।

७६९ : १ अंत ।

८०२ : १ सनमुष । २ करि जोरि ।

८०३ : १ B missing ।

तुम दरसन तै देव दोष दुष दालिद दलिहै ।
 तुम दरसन तै देव अमित मनवद्धित फलिहै ॥
 करुनानिधान तारनतरन अरु मै तुम दरसन करिव ।
 वर तीन प्रथम जय निरसही कहि-कहि कर्मनको हरिव ॥८०३॥

दोहा : नमसकार अष्टांग करि, दे प्रदक्षिणां^१ तीन ।
 जिन गुन पढि दरसन करहु, ह्वै^२ प्रभु पद तल्लीन ॥८०४॥

अरिल . प्रतिमा^१ ग्यारह आगुल लौं ह्वै घात की,
 ताहि^२ पूजि डारै धरि यह सुभ वात की ।
 होय जुदी जायगा तहां डक्का रहै,
 घर में कवहु न राषिवि राजी गुर कहै ॥८०५॥

दोहा : अरु पूजा की विधि सुनहु^१, भविजन अति मन लाय ।
 जैसे भाषी है गुरनि, तैसे^२ कहौ वनाय ॥८०६॥

चौपई : वेदी^१ तै^२ लषि दिसि ईसान, मेर^३ काठकी^४ थापि सुजान ।
 तापरि^५ जल वटि धारिए चाहि, पांडुसिला की नकल सुताहि ॥८०७॥
 वेदी तै जिन प्रतिमा लेय, ता जलवटि परि आय धरेय ।
 बहुरि दसौं दिगपालनि जान^१, जिनको विधिवत करि आह्वान ॥८०८॥
 पूजि करो तिनको सनमान, जथा जोग्य गुर-वचन प्रमान ।
 फुनि ह्वै^२ अर्घ प्रभू मुख पासि, विधि भिषेक प्रभु^१ करहु हुलासि ॥८०९॥
 कलस पंच भरि कै सुनि सीष, क्रमतें जल फुनि रस तै ईष ।
 घृत अरु दूध-दही सुभल्पाय, बहुरो सर्व बोषधी^१ वनाय ॥८१०॥
 जुदे-जुदे सनांन करवाय, अधिक-अधिक वाजित्र वजाय ।
 फुनि अगोछि प्रतिमा सुभ काय, थापि ठौर निज श्री जिनराय ॥८११॥

८०४ १ प्रदक्षणा ।

८०५ : १ प्रतिमा । २ ताही ।

८०६ : १ सुनौं । २ सो कछु ।

८०७ : १ एक । २ बोर । ३ मेरु । ४ काष्ठ । ५ तिनपरि ।

८०८ . १ जानि ।

८०९ : १ जिन ।

८१० . १ बोषदी ।

प्रथम हि क्षेत्रपाल कौं पूजौ, तेल सिंदूर धूप लै दूजौ ।
 बटुक दीप फल गुड लै भूरि^१, पढिकै मंत्र पूजि भरपूरि^२ ॥८१२॥
 फुनि प्रभु कौ करिकै आह्वान, पुस्पनितं पढि मंत्र सुजांन ।
 आह्वान के पुस्प^३ जु होय, प्रभु के चरननि परि^२ मेलहौ लोष ॥८१३॥
 मत्र आ स्वामिन सबौ, इत्यादिका त्रिपदि मत्र पढे ।
 ऊ ह्री अर्ह श्री परम ब्रह्म अतरो वुतरावुतर सबौ षट् आह्वानन ॥
 अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापना अत्र मम सनेहतौ भव भव वषट् सन्निधापन ॥†

दोहा : मन वच तन करि सुद्ध सव, मुषतं मंत्र उचारि ।
 दर्व्य चढावो आठ भवि, प्रभु की ओर निहारि ॥८१४॥
 जल गगादि सुगंध करि, धार चरन प्रभु देहु ।
 सो [लुटि] के तीनों जगत, करत पवित्र सु ऐहु ॥८१५॥^१
 ऊ ह्री अर्ह श्री परम ब्रह्मणे अनतानत ज्ञान सक्तये ॥इद मत्र ॥

दोहा : दर्व्य दर्व्य परि मंत्र यह, पढौ भवि सु मन लाय ।
 और पढत सो जोग्य नहि, नूतन धरे वनाय ॥८१६॥^१
 गरभ^१ जनम^२ तप ग्यान अरु, पंचम पद निरवान ।
 यह मुषतं उचारिकै, दर्व्य चढाय महान ॥८१७॥
 चंदन अरु कपूर लै, केसरि मद्धि घसाय ।
 चरचहु श्री प्रभु के चरन, भव अताप मिटि जाय ॥
 अषित सुगंधित ऊजले, कुंद पुस्प सम आनि ।
 पांच पुज प्रभु अग्र धरि, मनु पुनि पुंज समान^१ ॥८१८॥
 कुंद कंज मंदार^१ अरु, पहुप मालती जाय ।
 भ्रमर गुंज तिन परि करत, सो जिन चरन चढाय ॥८१९॥

८१२ : १ A भूरी । २ A पूरी ।

८१३ : १ पहुप । २ missing ।

८१५ : १ गंगादिक जल ल्याय कं, सजगधित करि लेहु ।

अध्रि पीठ जिन बिब कं, जल धारा कौं देहु ॥८१६॥

८१६ : १ Not at all in B

८१७ : १ गर्भ । २ जन्म ।

८१८ : १ समानि ।

८१९ : १ सदार ।

नांना विंजन दधि धिरत, दूग्ध^१ भात पकवांन ।
 प्रभु के मुष आगें धरौ, कनक थाल भरि आनि ॥८२०॥
 पच-दीप की आरती, जोय फेरि प्रभु पास ।
 जीति मोहवा जे भयो, पंचम ज्ञान^१ प्रकास ॥८२१॥
 अगुर सांम^१ अवर अवर, बावन चदन लेय ।
 फुनि करि घूप दसांग भवि^२, प्रभु मुष आगें घेय ॥८२२॥
 श्रीफलाम्र दाड़िम कपिथ, नारिंग पुंग विजोर ।
 इन दै आदि चढाय प्रभु, पद ढिगि सरस किसोर ॥८२३॥
 करहु अष्ट द्रव्य ऐकठे, अरु नंदाव्रत ठानि ।
 दोव साथिया सहित भवि, धरौ अर्घ मुषदानि ॥८२४॥
 असे पूजा अष्ट विधि, करहु भाव करि सुद्ध ।
 वहुरचौं पढि जयमाल कौं, अर्घ चढाय सुबुद्ध ॥८२५॥
 फुनि पढि सांति जु सुमन तै, पढो विसर्जन-मंत्र ।
 ता पीछै दै आसिषा, विघन-हरन जग जंत्र ॥८२६॥
 आह्वान^१ (नैव जानामि इत्यादि मंत्र)^२
 अह्वान के पुष्प^३ की, देहु आसिषा लोय ।
 और ठौर के पुष्प तौ, विघन हरन नहि होय ॥८२७॥
 वहुरि साखनि श्रवण करि, करै गुरनि की भक्ति ।
 दया भाव राषै सदा, दान देय विधि जुक्ति ॥८२८॥
 अरु क्रिया^१ सुनि आविका, तणी^२ कछुक हित ठानि ।
 उठि प्रभाति नवकार मनि, जपै दया उर आनि ॥८२९॥
 वहर भूमि दांतिण तणी, किरिया जिसै प्रकारि ।
 कहि आयो जो पुरिष कौं, सोही करै विचारि ॥८३०॥

चौपई : पै निति तिरिया अर्घ सनान, करै^१ सुभाषी यहै प्रमान ।

प्रासुक भुव लषिके जिय जंत, मस्तगि परि जल नहि नाषत ॥८३१॥

- ८२० . १ दूग्ध ।
 ८२१ : १ A ग्यान ।
 ८२२ . १ स्याम । २ दशांग ।
 ८२७ . १ आह्वान । २ not in B । ३ पुष्प ।
 ८२९ . १ A किरिया । २ तनी ।
 ८३१ : १ करहु ।

दोहा :

सूरज^१ की परकास ह्वै, तवै बुहारी देहु ।
 कै तौ कूटी मूज की, कै अति कोमल लेहु ॥८३२॥
 जीव जंत कौं वख तै, पहलै दीजे टालि ।
 बहुरि बुहारी दीजिये, निज नेत्रनिर्त निहालि ॥८३३॥
 चूल्हा की वांती सबै, काढै लषि कै जीव ।
 फुनि पांडू पीली तरणी^१, चौकौं देत सदीव ॥८३४॥
 चौका घातं दीजिये, मृतक जीव जो कोय ।
 लेय^१ विलाई आदि जिय, वामग निकसे होय ॥८३५॥
 नई भूमि जो होय तौ, जलतै छिड़का देहु ।
 जो चूनां की होय तौ, धोय सुद्ध करि नेहु ॥८३६॥
 लकड़ी अथवा ऊपले, सूके चूल्है वालि ।
 वीचे ह्वै जालनि सहित, तिनकौं दीजे^१ टालि ॥८३७॥
 निज वा उत्तिम^१ जाति तै, जल मंगाइऐ सुद्ध ।
 नीच जाति कौं भूलिहूं, छुवन न देहु सुबुद्ध ॥८३८॥
 पांणी छारणौं जुगति सौं, कपड़ा^१ गाढो^२ ल्याय ।
 हाथ अढाई दोवरा, इक नांतिणौं कराय ॥८३९॥
 ले करवा तल ढांकरणौं, टपका परन न देय ।
 करै जिवाण्यो^३ जुगति सौं, फुनि वा जलकौं लेय^२ ॥८४०॥
 होय जहां कौं जल जहां, भेजि देहु भविराय ।
 वामैं आछी जुगति सौं, दीजे ताहि मिलाय ॥८४१॥
 चंदवा चूल्है परहडै, ऊपरि इक-इक राषि ।
 जाले जिय षोटी वसत, पडै नही यह साषि ॥८४२॥
 नाज मगावो देषि कै, वीध्यौं घुण्यौं न होय ।
 ताहू कौं अति सोधिकं, षोटे पीसै जोय ॥८४३॥

८३२ : १ A सूरज ।

८३४ : १ A तरणौं ।

८३५ : १ A लेई ।

८३७ : १ दीज्ये ।

८३८ : १ उत्तम ।

८३९ : १ कपरा । २ गाडौं ।

८४० : १ तलि । २ देहु । ३ जिवाण्यौं ।

चाकी ऊषल पोति कै, पीसै षोटे नाज ।
नीच जाति के हाथ तै, ऐ न करावै काज ॥८४४॥
बहुरि चालणी छाजले, चमड़ा विन^१ जे^२ होय ।
तिनतै छांगै फटकिये, नाज सु दोष न कोय ॥८४५॥

सोरठा .

विन सोध्यौ ह्वै नाज, तरकारो धोर्ये विना ।
रसोईन^१ मै साज, ए आवा दीजे नही ॥८४६॥
ऊन हाड़ चमडा ज, फुनि षोटी जो वस्त ह्वै ।
रसोईन मै साज, कबहु न आवा दीजिये ॥८४७॥
जे घर माहि होय, तौला हाडी फुनि चरी ।
तिन्हें उघाडी कोय, राषि न कबहू रांधता ॥८४८॥
घिरत तेल जल कोय, चमड़ें परस्यौ हू जु ह्वै ।
ताहि न षावो कोय, बहुरि हींग कौ आदि दै ॥८४९॥
या विधि तिय सुचि ठानि, पहरै उत्तम^१ वस्त्र कौ ।
दया भाव उर आनि, करै रसोई जुक्ति सौं ॥८५०॥

दोहा :

बहुरि पुरिष जीमण करै, रसोईन^१ मै पंठि ।
तौ सनान करि कै करै, ऊजल घोवति वेठि ॥८५१॥
जो सनान परभाति कौ, करि फिरि फिरवा^१ जाय ।
तौ कटि^२ तक न्हाएँ विना, सुद्ध न ह्वै निज काय ॥८५२॥
प्रभू पूजि आवै घरा, जवै तयारी होय ।
सवै रसोई की सुचित, तव यम^१ करिये लोय ॥८५३॥
करै ग्रहस्थी षट करम, जिन विन^१ सरै न कोय ।
तिनकौ दोष जु आवसिक, जतन किये हू होय ॥८५४॥
ताकौ दोष मिटै सु यम, सिघ सधकी कढवाय ।
चढवावै भगवत कौ, जिन-देवल मै जाय ॥८५५॥

८४५ १ विनि । २ जो ।
८४६ १ रसोईनि ।
८५० १ A उत्तिम ।
८५१ : १ रसोइन ।
८५२ : १ A फिरिवा । २ तकि ।
८५३ : १ इम ।
८५४ : १ विनि ।

फुनि द्वारा पेषण करै, जो मुनि आवै कोय ।
 ताको लै पडगाहि दै, सुद्ध अहार जु सोय ॥८५६॥
 पंगे कवहु न दीजिये, मुनि को भोजन दान ।
 विन जल दधि घृत और जो, वास्यो भोजन जान ॥८५७॥
 वांटे वांटी पाहुने^१, मत्र जंत्र अरु देव ।
 इनकै निमित्त कियो जु ह्वै, सो मुनि दै न तजेव ॥८५८॥
 वीध्यो भूठो^१ वरण-च्युत, रोग वधावन वार ।
 सूको जीरण^२ चलित रस, रिति विरुद्ध दुषकार ॥८५९॥
 आयो ह्वै परगांव सौं, चमडै दुरजन कोय ।
 परस्यो विल्ली तुरक कौ, निंदनीक जो होय ॥८६०॥
 फुनि परस्यो ह्वै रजसुला, तिय घर की का आन ।
 ए सब दूषण टालिकै, दै मुनि भोजन दान ॥८६१॥

रजस्वला^१ वर्नन

रजसुलानि तिय को वरन, कछु यक कहौ सुभाय ।
 ग्रंथनि को मत पाय कं, सो सुनिऐं चित लाय ॥८६२॥
 होत रितवती जो त्रिया^१, जाके हैं द्वै भेद ।
 ऐक प्रकृत इक विकृत है, विवि सुनि वहुरि निषेद ॥८६३॥
 ह्वै जोवन मद रोग तै, विकृत सु होय अकाल ।
 सो सुध ऐक सनांन तै, त्रय दिन गने न लाल ॥८६४॥
 होत मास कै मास जो, ताहि प्रकृत^१ तू जानि ।
 निसि आधी वीतै जु ह्वै, तवतै त्रय दिन मानि ॥८६५॥

छंद पद्धरी : इन तीनों दिन कै मांझि जोय,
 एकांत विषं ती रहै सोय ।

८५८ : १ पाहुने । २ A निमित्त ।

८५९ : १ भूठो । २ जीरण ।

८६२ : १ A रजसुला ।

८६३ : १ त्रिया ।

८६४ : १ गिने ।

८६५ : १ ^ विरुद्ध ।

चित्त राषे सुस्थ' जु धारि मॉन,
 परसै न काहि नहि करे गॉन ॥८६६॥
 चरचा न करे गुर देव धर्म,
 पसवोई सूघत नाहि पर्म ।
 दिन तीन जु नीकेँ सील पालि,
 भोजन इक घेर करे सम्हालि ॥८६७॥
 गोरस न पाय काजल करे न,
 गघ लेप न माला उर' धरै न ।
 मुप निज गुर नृप कुल देव-देव,
 नहि लपेँ आरसी नहि लपेव ॥८६८॥
 फुनि अपनी भी जो पीव होय,
 तिह साथि वोलिऐ हू न कोय ।
 वृष' तलि फुनि सोवत पाट नाहि,
 जप मत्र हूँ हूँ नहि कराहि ॥८६९॥
 जीमें दिन कासी और पात्र,
 पातलि अंजुली मधि पुध्या' मात्र ।
 तीनों दिन तौ करिकै सनात,
 घर काज करे कोउ न आन ॥८७०॥
 चौर्ये दिन घटिका छह प्रमान,
 दिन चढे तवेँ करिकै' सनात ।
 भीटेँ सब कौं भोजन करेय,
 पचम दिन गुर फुनि देव सेव' ॥८७१॥
 निज मंदिर मै करिये सनात,
 नदी तलाव मति जाहु आन ।
 बहुरचौं अव सुनिये और वन,
 नर नारि बहुरि ऐली करे न ॥८७२॥

८६६ : १ सुसह ।

८६८ : १ उ ।

८६९ : १ वृष ।

८७० : १ क्षुधा ।

८७१ : १ करि सुध । २ सेव ।

दोहा :

तिय रतिवती जु जांनि कै, वतलावो मति कोय ।
 ऐक वास तै सुध ह्वै, वतलायें तै लोय ॥८७३॥
 सपरस कीतौ कांचली, वस्त्रनि तै इक^१ हाथ ।
 रहिये द्वरि सु तीन दिन, अवर सुनीं इक गाथ ॥८७४॥
 वैठी सूती ह्वै जहां, फुनि भोजन जहां^१ कीन ।
 सो भुव लीपै सुद्ध ह्वै, नाही रहै मलीन ॥८७५॥
 बालक पीवै जो सतन, छांटे तै सुध होय ।
 बड़े^१ बाल परसै जु को, न्हायें सुचि ह्वै सोय ॥८७६॥
 रितिवती^१ जु जिह पात्र मै, भोजन कीन्हौं^२ चाहि ।
 तामें भोजन जो करै, दोष लगै अति ताहि ॥८७७॥
 बख-जुक्त न्हावै बहुरि, दोय करै उपवास^१ ।
 तब ताकौ दूषन मिटै^२, इम गुर करै प्रकास ॥८७८॥
 पात्र बख रहवा^१ तणी, ठौहर परसै कोय ।
 न्हावै अपराजित जपै, सतव सु तब सुध होय ॥८७९॥
 सुकवि कहालौं वरनवै, रतिवति दोष निहारि ।
 लोक-विरुध जो औरहू, टरै सु दीजे^१ टारि ॥८८०॥
 असी रतिवति जानिये, जो नारी घर मांहि ।
 तौ मुनि भोजन देहु मति, अति ही दोष लगांहि ॥८८१॥
 वरनन ताके दोष कौ, करै^१ सुकवि अस कौन ।
 द्वारा पेषण हूं न करि, ता दिनि^२ रहु^३ गहि मौन ॥८८२॥
 जो घर मै ह्वै सुद्धता, तौ मुनि कौं पडगाहि ।
 विधिवत नवधा भक्ति करि, भोजन दीजे ताहि ॥८८३॥
 जब अहार कौं ले चुकं, तब वन^१ मुनि कौं जाय ।
 निज श्रावक निज द्वारलौं, आवहु भवि पहुचाय^२ ॥८८४॥

८७४ : १ A यक ।

८७५ . १ जहं ।

८७६ : १ बडो ।

८७७ : १ रतिवती । १ कीनीं ।

८७८ : १ A घ पवास । २ टरै ।

८७९ : १ A रहवा ।

८८० : १ दीज्ये ।

८८२ . १ A missing । २ दिन । ३ रहि ।

८८४ : १ उन । २ A पहुचाय ।

जो मुनि हूं नाहीं मिलें, श्रावक हूँ नहि होय ।
तौ भूषे कौं दीजिए, दया भाव करि लोय ॥८८५॥

दांन वर्नन

जिनमत मांहीं दान ऐ, गुरनि वताये च्यारि ।
सो सबही कौं देहु भवि, मनमें हरष विचारि ॥८८६॥
लषिकें जानि सुपात्र कौं, दीजे दान अहार ।
श्रीरनि कौं धुध्या निमति, देहु दया उर धारि ॥८८७॥
वोषदि^१ जोग्य वरणाय करि, जथा-जोग्य तुम देहु ।
रोग मिटै रोगीनु कौं, तुम भव भव सुष लेहु ॥८८८॥
ग्रथ जिते जिनमत तरौं, तिन्हें लिषाय स्वरूप ।
कमडल पोछी वस्तिका, दीजे गुरनि अनूप ॥८८९॥
जीव जत प्राणी सकल, ताकौं मारत कोय ।
ताहि वचाय उपाय करि, अभय दांन यह जोय ॥८९०॥
ऐही च्यारचौं दान हैं, महा जगत में सार ।
या भव वारापार तै, ले पाँहचावै पार ॥८९१॥
बहुरि श्रावकनि कौं कहे, दक्षि करन ए च्यारि ।
पात्र सकल अरु सम दया, तेहू देहु विचारि ॥८९२॥
पात्र मुनिश्वर फुनि कहे, श्रावक समकितवान ।
भोजन दे फुनि वस्तिका, कमडल पीछी दांन ॥८९३॥
सकल दक्षि यह जानि तू, परिग्रह कौं करि त्याग ।
घांस कुटव धन आदिसौं, तजै सर्व अनुराग ॥८९४॥
सुत दै आदि बुलाय सब, सोंपें घर कौं भार ।
आप निरापेधी रहै, पालै तप-व्रत सार ॥८९५॥
समदति याकौं कहत हैं, साध धर्मो त्वैं कोय ।
अथवा बहुरा सु भाणिजी, होत जवाई सोय ॥८९६॥
हय गय रथ धन धान्य घर, वख्र आभरण कोय ।
इन दै आदि जु दीजिए, जथा-जोग्य जिह होय ॥८९७॥

दया दक्षि प्रांगी सकल, भूषे रोगी जानि ।
 बालक बूढा तरुण कौं, जथा-जोग्य^१ दै दांत ॥८६८॥
 ए च्यारचौं ही दक्षि हू, कहे जिनागम मांहि ।
 करि विचार अरु दीजिए, यामैं दूषन नाहि ॥८६९॥
 दत्ति सम लषि दीजिए, दान सु निति प्रति देहु ।
 यथा-सक्ति तव श्राप निज, भोजन सुद्ध करिहु ॥८७०॥
 जिनमत के अनुसार तै, कहैं दांत अरु दत्ति ।
 भाव सुद्ध करि दीजिए, सुभ फल पंहै^१ सत्ति ॥८७१॥
 यथा-सक्ति दै दांत फुनि, निज जीमत ह्वै सुद्ध ।
 ऊजल धोवति वेठि करि, साध मौन^१ सुबुद्ध ॥८७२॥

मौनि वर्नन

भौंहा रेवे^१ पै नही, अंगुरी तै न वतांहि ।
 नांहि हलै न षंषारिये, सोही मौन कहांहि ॥८७३॥
 बहुरि जीमतां पालि भवि, श्रेतराय ये सात ।
 मांस मृतक मद रुधिर फुनि, हाड़ चाम छह वात ॥८७४॥
 ए तौ नांहिं देषिए, फुनि जाको ह्वै नेम ।
 थाली मै श्रावै तरु, मुष मै देहु न केम ॥८७५॥
 जिनमत मै तजिवो कहे, ऐ वाईस अभष्य ।
 तिनकौं लेहु विचारि भवि, षावो तजौ प्रतष्य^१ ॥८७६॥

कवित कंद मूल बोला निसी भोजन तुषार विस,
 मि.उ. : संधारण सु-घोल^१ बडा कवहू न षाइऐ ।
 मधुमद मांषन चलितरस मांटी मांस,
 बहु-बीजा वंगरा अजांण फल गाइऐ ॥

८६८ : १ A जोगि ।

८७१ : १ ह्वै है ।

८७२ : १ मौनि ।

८७३ : १ A राषे ।

८७६ : १ A षतक्ष ।

८७७ : १ श्रौघोल ।

तुछ फल पीलू षणां ऊवरा कठूंवरा^२,
 सु बडवाला पीपला ऐ तनक न ल्याइऐ^३।
 श्रावग कौं यनकौ सरव त्याग कह्यौ,
 ऐही वाईस अमष्य जिनमत में वताइऐ ॥६०७॥

टोहा : जो सधि आवैं तौ भलैं, मॉनि और अतराय ।
 पै श्रो सकल हरीनु की, मरजादा करि षाय ॥६०८॥
 घात-पात्र में जीमिवो, भाष्यी^१ है उत्तकिष्ट ।
 जो न मिलैं तौ जीमणौं, पातलि हू में सिष्ट ॥६०९॥
 ता पातलि के भेद ह्वै, सूकी दीजे^२ त्यागि ।
 तामैं जीव पडै घनें, जाला रहै जु लागि ॥६१०॥
 व्योपारी जो होय सो, करै भलौ व्योपार ।
 चाकर करि सुभ चाकरी, दव्य उपावो चार^३ ॥६११॥
 पैसा षरे पसेव कौं, लाय रसोई माहि ।
 और तरह कौ होय सो, यामैं खरचौ नाहि ॥६१२॥
 तजहु अथाणौ तेल कौ, फुनि वजार कौ चून ।
 छाछि पहर सोला पछें, षाण तणी करि मून ॥६१३॥
 भुरडी कहीं जवारि की, छोला दंहगी होय ।
 आदि वाजरे के सिरा, होला करहु न कोय ॥६१४॥
 दोय ढालि ह्वै नाज की, ता संगि दही न षाय ।
 यातै वरजी है गुरनि, गलै जीव पडि जाय ॥६१५॥
 होय चलित-रस जो वसत, फल दं आदि अहार ।
 बहुरि मिठाई हूं चलित, षावो तजौ प्रकार ॥६१६॥
 तजौ ऊट का दूध की, षीर षाण भविराय ।
 यामैं दोष लगै अधिक, हिंसादिक कौ आय ॥६१७॥

६०७ २ कठुवरा । ३ लाइए ।

६०९ : १ A लाष्यौ ।

६१० : १ बीज्ये ।

६११ : १ A चार ।

दोय पहर दिन जब चढे, मद्धि घड़ी घटि दोय ।
 तव तँ सांमायक करै, च्यारि घड़ी ली लोय ॥६१८॥
 वहुरि उतावलि होय को, तौ लषि व्यौत विचारि ।
 नाम लेहु प्रभु को भलै, घड़ी ऐक ह्वँ च्यारि ॥६१९॥
 या विधि ही संघ्या तराँ, सांमायक तू ठानि ।
 घड़ी दोय दिन वहुरि निसि, घड़ी दोय लँ मांनि ॥६२०॥
 निसि वीतँ एक पहर जब, तव गृहस्थ जो होय ।
 निज तिय रिति सेवन करै, पहलै करहु न कोय ॥६२१॥
 तामें ते परवी दिवस, चौदसि आठँ जांनि ।
 त्यागँ निज पर सब तिया, ते जग में गुनषानि ॥६२२॥
 पर-तिय कौ तौ जांनि कँ, करै सर्वथा त्याग ।
 परवी दिन फुनि दिवस कौ, निज तिय तजि बड-भाग ॥६२३॥
 यह तौ विधि तुमकौ कही, फुनि सुनिऐँ भविराय ।
 घर मै धन बहु होय तौ, जिन-मंदिर चुनवाय ॥६२४॥
 फुनि पूजा के उपकरण, नए नए करवाय ।
 भारी प्याला आरती, कलस जलौटि वनाय ॥६२५॥
 ठौंरां अर धूपायणां, भांभि भालरी थार ।
 चंदवा आदि वनाय करि, धरि देहुरा मभार ॥६२६॥

६१८ : १ A includes the following additional lines between (917-918) without disturbing the verse order

तापरि साषि धर्मोमृत क्रतेन छप्पै

विरल मूंग उड़दादि धान्य दो दालि तरौ जे ।
 काचे दधि तक्र मै मेलि नहि षांण भरो जे ॥
 प्रात गले कँ मद्धि जीव बहु उपजि मरे हैं ।
 धर्म्मामृत श्रावकाचार मै वरन करै है ॥
 मेवादि तरौ दो दालि ह्वँ तिनकौ विदल नहीं धरचौ ।
 भनि वषतराम श्रैसँ सुगुर गृथनि मै वरनन करचौ ॥१॥

दोय दालि कौ धान्य फुनि, दुग्ध मिलाय न घाहु ।
 पत्र जाति जे हरित हैं, चत्रमांस तजि साहु ॥२॥

नए वनाओ विव प्रभु, फुनि प्रतिष्ठा कराय ।
 चव विधि संघ जिमाय भवि, तीर्थनि संग चलाय ॥६२७॥
 घन पाये कौ फल यहै, दांन पुन्य जिन-धर्म ।
 इनमै घन बहु घरचि हौं, तौ पैही सुष मर्म ॥६२८॥

अथ सूवा सूतिग वर्नन

दौहा^१ : सूवा सूतिग हू तरणी, कछु यक सुणिये वात ।
 मरजादा माफिक करै, मिटै तास उतपात ॥६२९॥
 सूवा की यह विधि तिया, करै चतुर्थ सनांन ।
 तव तै मांस जु तीसरै, जात जु गर्भाधान ॥६३०॥
 श्राव नाम ताकी कहै, इक सनांन ह्वै सुद्ध ।
 मास पच^१ में षष्ट मै, जात सु सुनहु सुबुद्ध ॥६३१॥
 नाम पात ताकी कहै, सूवो दिन छह पांच ।
 गिनिऐ न्हाऐ सुद्ध^२ ह्वै, यहै मांनि तुव साच ॥६३२॥
 होय सातवे श्राठवे, नवे सु कहि परसूति ।
 ताकी सूवो दस दिनां, फुनि न्हाऐ सुघ भूति ॥६३३॥

सूतिग वर्नन

दौहा^१ : बालक सूवो होय तौ, सूतिग गिणि दिन एक ।
 जौ बालक पौढी पिरै, तौ त्रय दिनां गिरोक ॥६३४॥
 बड़ो पुरिष^१ कोई पिरै, तै ताकी सूतिग ऐहु ।
 दिन द्वादस औरै क्रिया, लोक प्रसिद्ध करेहु ॥६३५॥
 यातं यह वरनन कियो, मुनि कौं भोजन दान ।
 सूवा सूतिग माहि तुम, भूलि न देहु सुजान ॥६३६॥
 ऐ ती श्रावग के कहे, किरिया फुनि आचार ।
 तामें तै श्रावे जु सधि, सो सब साधहु सार ॥६३७॥
 अरु सुनिऐ श्रावग-धरम, कछु यक कहौ वनाय ।
 तातं अघ नसि स्वर्ग लहि, फुनि सिवगति कौ जाय ॥६३८॥

६२९ : १ missing ।

६३१ : १ पांच ।

६३२ : १ शुद्ध ।

६३४ : १ A missing

६३५ : १ पुरष ।

अथ श्रावग-धर्म वर्णन

दोहा :

अर्नहिंसा रु अचौर्यं फुनि, (अ)सति^१ व्रं ह्यचर्यं पालि ।
 परिगृह करि परमाण ऐ^२, अणुव्रत पंच सम्हालि ॥६३६॥
 हिंसादिक कौं त्यागि हौं, सप्त विसन कै साथ ।
 पलिहै जिनमत तोहि तव, जपिहै जिन-गुन-गाथ ॥६४०॥
 सुनहु अर्हिंसा कौ कथन, भविजन अति मन लाय ।
 जीव जंत प्रांगी सकल, तिनतें रहु समभाय ॥६४१॥
 जीव-वच^१ मति कीजियो, कवहू मन वच काय ।
 दुष-हू काहू जीव कौं, वस लागत मति ध्याय^२ ॥६४२॥
 पुंन्य न पर-उपगार सम, जो ह्वै करवा जोग्य ।
 पर-पीड़न सम पाप नहि, है यह धर्म मनोग्य ॥६४३॥
 भोजन निसि कौं करन तजि, रांधै भी मति कोय ।
 जीव पड़े जामै अधिक, मरै सु हिंसा होय ॥६४४॥
 फुनि हिंसा के करन के, तजिए सकल उपाय ।
 निज मन वच तन तें वहरि, और सुनौं भविराय ॥६४५॥
 हिंसा करवो त्यागि फुनि, त्यागि देन उपदेस ।
 वृथा लगै उपदेस तें, अनरथ दंड विसैस ॥६४६॥
 सो यह अनरथ दंड कौं, वरनन कहौं वनाय ।
 गृथनि के अनुसार तें, सोहू तजौ सुभाय ॥६४७॥

छंद भुजग प्रयात : कहै एक आछी हवैली वनावो,
 कुवा वाग बाड़ी तलाई पुदावो^१ ।
 परचौ मेह कीजे अवे क्यों न षेती,
 पलैगो कडूवा सब नाज सेती ॥६४८॥
 भए कापड़ा मैल में सो धुपावो,
 अवे कातरचा क्यों न वेगे करावो ।
 पड़े षाट मै जीव धूपे नषावो,
 परी सीस औ वस्त्र मै जूं कढावो ॥६४९॥

६३६ : १ (अ) Injured २ यह ।

६४२ : १ वद्ध । २ धाय ।

६४८ : १ A षनावो ।

कहै व्याह वेटा^१ तराँ वेगि कीजे,
 सुता के अवे हाथ पीला करीजे ।
 तिहारो जु वैरी अवे पासि आयो,
 लडौ याहि मारो चहौ चैन पायो ॥६५०॥
 बड़ो वृद्ध^२ है याहि वेगे कटावो,
 भले षाट चौकी किवाड़े बनावो ।
 पड़चौ^३ है कजोडा^३ ब्रुहारी न दीजे,
 भली वावडी ऐक आछी न कीजे^४ ॥६५१॥
 तिया कौ कहै सीस गुंथाय लीजे,
 इन्है^१ आदि ए सीष काहू न दीजे ।
 कहौ ती कहौ दान पूजा करावो,
 करौ दास श्री देहुरा कौ बनावो ॥६५२॥

दोहा : मांगे हू दीजे नही, जातै हिंसा होय ।
 तिनहं के कछु नाम ये, सुनिये लज्जा षोय ॥६५३॥

छंद भुजग प्रयात : मगे दैन कौ राछ आछे बनावें,
 करावें प्रससा भलै चैन पावें ।
 हला मूसला ऊंषला देत मागे,
 कटारी छुरी षेट बडूक सागे ॥६५४॥
 कमांणौं क्रपांणौं कडाही^१ गंडासी,
 कुसी चावका, जेवड़ा मूज फासी ।
 भले अकुसा नांथ आछी नकेलै,
 नई पोटली चाम [की ले सकेलै ॥६५५॥
 घुरल्ला^१ घुरप्पा विसोले सु नाडी,
 तई सांकलै डांग घोटा कुहाड़ी ।
 चकी फाहुड़ा आर श्री दांतला जे,
 वली आगि श्री लाकडी अपला दे ॥६५६॥

६५० . १ वेटी ।

६५१ . १ वृद्धि । २ परचौ । ३ कजोरा । ४ करीजे ।

६५२ . १ इन ।

६५५ . १ कडाई ।

६५६ . १ परल्ला ।

खिलावै जुंवां भांगि आफू तमाषू,
मगी दे मुकररै तियाकं भिलाषू ।
इनै आदि संसार मै वस्त हिंसा,
दिएँ दोष लागै कहो का प्रसंसा ॥६५७॥

दोहा : कहियतु ए षोटे विरणज, जिनतें उपजै पाप ।
तो काहे कौं कीजिये, गहि श्रावण की छाप ॥६५८॥

छद पद्वरी : दारु सावण मद लोह जाति,
तिल लूण सिघाड़ा चलित कांति ।
बीधौ अन सहत^१ सु कंद मूल,
गुड़ तेल नीलि आफू समूल ॥६५९॥
इन आदि सबै हिंसा प्रकार,
व्यौपार तजौ भवि करि विचार ।
लूण्यो घटिका द्वै राषि मीत,
पोछे तवाय^१ लीजे नचीत ॥६६०॥
निज कारिज रौष हरचौ न काटि,
षेती मति करि मति तोलि घाटि ।
उच्चाटन औ वसिकरन मंत्र,
इन आदि और औषधि^१ ह तत्र ॥६६१॥
जिनमै हिंसा कौ लागै दोष,
सो न करि रहौ^१ गहि^२ कै संतोष ।
पर जीवन कौ दुष कष्ट जानि,
दे मति तजि आरति रौद्र ध्यान ॥६६२॥
हिसक जीवनि पालिए नांहि,
कुत्ता विल्ली वुगवो सताहि ।
तूती मैनां सिकरा^१ सिचाण,
जलकुही वाज चडूल वाण ॥६६३॥

६५९ : १ सहैत ।

६६० : १ तवाह ।

६६१ : १ A वोषधि ।

६६२ : १ गहौ । २ रहि ।

६६३ : १ सिकरे ।

जैन शासनमें निश्चय और व्यवहार

(निश्चय और व्यवहारका विस्तृत तथा सर्वाङ्गीण प्रामाणिक विवेचन)



लेखक

सिद्धान्ताचार्य पण्डित वंशीधर व्याकरणाचार्य

न्यायतीर्थ, जैनदर्शन-साहित्यशास्त्री

वीना (सागर), म प्र

(जैन तत्त्वमीमासाकी मीमासा, भाग १, जैनदर्शनमें

कार्य-कारणभाव और कारकव्यवस्था आदि

रचनाओके लेखक)



भारतीय शैल-दर्शन केन्द्र
जयपुर

प्रकाशक

श्रीमती लक्ष्मीबाई (पत्नी पं० वंशीधर शास्त्री) पारमार्थिक फण्ड,
वीना (मध्यप्रदेश)